पढ़ें और बढ़ें शृंखला

शब्दों में झाँकते गाँधीजी

स्वच्छ भारत

एक कदम स्वच्छता की ओर

पढ़ें और बढ़ें शृंखला

शब्दों में झाँकते

गाँधीजी

विद्ययाऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

21194 – शब्दों में झाँकते गाँधीजी

ISBN 978-93-5292-821-7

प्रथम संस्करण

जून 2024 ज्येष्ठ 1946

PD 5T SU

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2024

₹ 110.00

80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 से प्रकाशित तथा हाई-टेक ग्राफ़िक्स, एफ-28/3, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फ़ेस-II, नयी दिल्ली - 110 020 द्वारा मुद्रित।

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फ़ोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रचारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशन की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन. सी. ई. आर. टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नई दिल्ली 110 016 फ़ोन : 011-26562708

108 ए 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बेंगलुरु 560 085 फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फ़ोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट धनकल बस स्टॉप पिनहटी
कोलकाता 700 114 फ़ोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फ़ोन : 0361-2676869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	:	*अनूप कुमार राजपूत*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*अरुण चितकारा*
मुख्य व्यापार प्रबंधक (प्रभारी)	:	*अमिताभ कुमार*
सहायक उत्पादन अधिकारी	:	ओम प्रकाश

आवरण एवं चित्रांकन
जोएल गिल

आमुख

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद समय-समय पर विद्यार्थियों के लिए पाठ्यपुस्तकों के साथ-साथ अतिरिक्त पाठ्य सामग्री का प्रकाशन करती है। विद्यार्थियों के पास कुछ ऐसे विकल्प भी उपलब्ध होने चाहिए जो पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त हों। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* के दस्तावेज में पठन सामग्री की उपलब्धता पर विशेष बल दिया गया है। इसे ध्यान में रखकर विद्यार्थियों के लिए 'पढ़ें और बढ़ें शृंखला' की योजना बनायी गई। इस योजना के तहत 'शब्दों में झाँकते गाँधीजी' शीर्षक पुस्तक को तैयार किया गया है। इस पुस्तक में साहित्य अनुस्यूत गाँधी के विचारों और सिद्धांतों पर केंद्रित कहानियों, कविताओं और उपन्यासों के अंशों का संचयन किया गया है। आशा है, यह पुस्तक विद्यार्थियों में पढ़ने की संस्कृति विकसित करेगी तथा अध्यापकों सहित अन्य पाठकों को आकृष्ट करेगी।

पुस्तक की सामग्री चयन और समीक्षा के लिए आयोजित कार्यशालाओं में उपस्थित होकर जिन विषय विशेषज्ञों तथा अनुभवी अध्यापकों ने अपने बहुमूल्य सुझावों द्वारा पुस्तक को उपयोगी बनाने में सहयोग किया है, परिषद उनके प्रति आभार व्यक्त करती है। यह पुस्तक परिषद के भाषा शिक्षा विभाग के हिंदी संकाय सदस्यों द्वारा किया गया एक सराहनीय प्रयास है।

निश्चय ही, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों का विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। अत: पुस्तक को और उपयोगी बनाने के लिए विद्यार्थियों, अध्यापकों और विशेषज्ञों के सुझावों का स्वागत है।

दिनेश प्रसाद सकलानी
निदेशक
रा.शै.अ.प्र.प.

नई दिल्ली
नवंबर 2023

प्राक्कथन

भारतीय जनमानस में आज भी गाँधीजी की स्मृति एक जननायक के रूप में है। उन्होंने न केवल अंग्रेज़ी हुकूमत से हमें आज़ादी दिलायी, बल्कि सत्य, अहिंसा और न्याय के मार्ग पर दृढ़तापूर्वक चलते हुए सादगी और सेवा-भाव की प्रेरणा भी दी। गाँधीजी अपने विचारों और सिद्धांतों पर जीवन-भर अडिग रहे। उनके भीतर उदारता, नम्रता, दया, करुणा, क्षमाशीलता, नि:स्वार्थ सेवा, देश-प्रेम, स्वच्छता और प्राणीमात्र के दुख को देखकर दुखी हो जाने का गहरा भाव था। वे कोई भी कार्य यह सोचकर करते थे कि इसका लाभ समाज के सबसे कमजोर व्यक्ति को कितना मिल सकेगा। भारतीय समाज, साहित्य, कला, चिंतन और राजनीति पर उनके इन विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा।

'पढ़ें और बढ़ें' शृंखला के अंतर्गत निर्मित 'शब्दों में झाँकते गाँधीजी' शीर्षक पुस्तक के निर्माण का मूल उद्देश्य साहित्य की अलग-अलग विधाओं के ज़रिए गाँधीजी के विचारों और सिद्धांतों से किशोरवय के पाठकों को अवगत कराना है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए पुस्तक में काव्य और गद्य की विविध रचनाओं को शामिल किया गया है। पुस्तक की पहली रचना गाँधीजी की स्वरचित एक ऐसी प्रार्थना है जिसमें सेवा, सादगी, समर्पण और अटूट विश्वास की भावपूर्ण मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

पुस्तक में शामिल अधिकांश कविताएँ जहाँ गाँधीजी के व्यक्तित्व और जीवन पर केंद्रित हैं, वहीं कुछ उनके विचारों और सिद्धांतों की भावभूमि पर हैं। इन कविताओं के अतिरिक्त पुस्तक में कुछ कहानियाँ और उपन्यास-अंश भी शामिल किए हैं। इनमें हृदय परिवर्तन, कष्ट और संकट में पड़े इंसान के प्रति सहानुभूति और सेवा-सहयोग की भावना, श्रम का महत्व, स्वावलंबन, सादगी, स्वच्छता से भरे प्रेमपूर्ण जीवन की श्रेष्ठता की अभिव्यक्ति, त्याग, देशप्रेम, साहस तथा संघर्ष की वैचारिक शक्ति और देशहित में शहादत देने की भावना अभिव्यक्त हुई है।

पुस्तक में गाँधीवादी मूल्यों पर आधारित कहानियों के साथ 'रंगभूमि', 'तितली' और 'मैला आँचल' उपन्यासों के अंशों को शामिल किया गया है। इन उपन्यास अंशों के कथानक और चरित्रों में गाँधीजी के विचारों और उनके युग की झलक स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। वस्तुत: गाँधीजी

का जीवन-दर्शन इतना व्यापक है कि उसका प्रभाव उनके बाद के युग के साहित्य पर भी पड़ता रहा। 'रंगभूमि' का कथानायक सूरदास सत्य, अहिंसा और न्याय के मार्ग पर चलते हुए असहनीय कष्टों को सहता है और अंत में अपने प्राण भी दे देता है, लेकिन अन्याय के सामने किसी भी तरह नहीं झुकता। उपन्यास में सूरदास नफ़रत को प्रेम से जीतने का प्रयत्न करता है।

'तितली' उपन्यास में संपत्ति का मोह त्यागकर शिक्षा, ग्राम-सुधार तथा जन-सुधार के कार्यक्रमों द्वारा समाज में एक नयी जागरूकता का चित्रण किया गया है। पुस्तक के अंत में 'मैला आँचल' का वह अंश दिया गया है जिसमें बावनदास के चरित्र के माध्यम से आज़ादी के बाद गाँधीवादी विचारों और सिद्धांतों की स्थिति का मार्मिक रेखांकन हुआ है।

संध्या सिंह
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
भाषा शिक्षा विभाग
रा.शै.अ.प्र.प., नई दिल्ली

पुस्तक निर्माण समिति

सदस्य

प्रेम कुमार तिवारी, *एसोसिएट प्रोफ़ेसर*, दयाल सिंह कॉलेज, नई दिल्ली

राजेश कुमार मल्ल, *प्रोफ़ेसर*, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

विजय बहादुर सिंह, *प्रोफ़ेसर*, *वरिष्ठ आलोचक* एवं *साहित्यकार,* भोपाल

श्याम सिंह सुशील, *हिंदी लेखक*, ए-13 दैनिक जनयुग अपार्टमेंट्स, वसुंधरा एनक्लेव, दिल्ली

समन्वयक

संध्या सिंह, *प्रोफ़ेसर* एवं *विभागाध्यक्ष*, भाषा शिक्षा विभाग, रा.शै.अ.प्र.प., नई दिल्ली

आभार

परिषद, इस पुस्तक में सम्मिलित रचनाओं के लिए रचनाकारों, उनके परिजनों और उन संस्थानों व प्रकाशकों के प्रति आभारी है, जिन्होंने पुस्तक हेतु अपनी रचनाओं को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान की।

पुस्तक निर्माण संबंधी कार्यों में तकनीकी एवं अन्य प्रकार के सहयोग के लिए परिषद, अनामिका, *प्रोफ़ेसर,* सत्यवती कॉलेज, नई दिल्ली; दुर्गा प्रसाद गुप्त, *प्रोफ़ेसर,* जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली; हिरण्य हिमकर, *सहायक प्रोफ़ेसर,* रामानुजन कॉलेज, नई दिल्ली; पल्लव, हिंदू कॉलेज, नई दिल्ली; और रवि रंजन, अमित कागरा, चंदन कुमार एवं आशीष कुमार, *जे.पी.एफ़.,* भाषा शिक्षा विभाग, रा.शै.अ.प्र.प., नई दिल्ली; के प्रति आभार ज्ञापित करती है।

परिषद, पुस्तक के संपादन और उसे अंतिम रूप देने के लिए प्रकाशन प्रभाग की आभारी है। भाषा संपादन के लिए परिषद, अतुल कुमार मिश्र, *संपादक* (संविदा) और लेआउट के लिए संजू शर्मा, रेखा एवं सगीर अहमद *डी.टी.पी. ऑपरेटर* (संविदा) और सुरेंद्र कुमार, *प्रभारी*, डी.टी.पी. प्रकोष्ठ, प्रकाशन प्रभाग, रा.शै.अ.प्र.प.; के प्रति आभार व्यक्त करती है।

विषय-सूची

आमुख			*iii*
प्राक्कथन			*v*
कविताएँ			
1.	प्रार्थना	मोहनदास करमचंद गाँधी	1
2.	युगावतार	सोहनलाल द्विवेदी	5
3.	अशोक की चिंता	जयशंकर प्रसाद	8
4.	बापू के प्रति	सुमित्रानंदन पंत	13
5.	गाँधी तो हमारा भोला है	अकबर 'इलाहाबादी'	15
6.	मेरे जन-नायक की वाणी	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	17
7.	गणतंत्र दिवस	हरिवंश राय बच्चन	20
8.	तुम कागज़ पर लिखते हो	भवानी प्रसाद मिश्र	23
कहानियाँ			
9.	हार की जीत	सुदर्शन	26
10.	परीक्षा	प्रेमचंद	32
11.	पोली इमारत	पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'	38
12.	गौरी	सुभद्रा कुमारी चौहान	45
13.	चिता के फूल	रामवृक्ष बेनीपुरी	55
उपन्यास-अंश			
14.	रंगभूमि	प्रेमचंद	68
15.	तितली	जयशंकर प्रसाद	80
16.	मैला आँचल	फणीश्वर नाथ 'रेणु'	100
लेखकों के बारे में			127

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1]**[संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य]** बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में**

व्यक्ति की गरिमा और [2]**[राष्ट्र की एकता**

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली **बंधुता**

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।
2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) ''राष्ट्र की एकता'' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

प्रार्थना

मोहनदास करमचंद गाँधी

कविता के शिल्प में यह 'प्रार्थना' गाँधीजी की एकमात्र कविता है, जिसे उन्होंने मीरा बहन के विशेष आग्रह पर लिखा था। इस कविता का अनुवाद प्रसिद्ध कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने किया है।

गाँधीजी के विचार-चिंतन का सार तत्व है— उदारता, नम्रता, दया, करुणा और गरीब एवं दु:खी मनुष्य के प्रति आत्मीयता एवं सेवा-भाव। कविता में भी इन्हीं भावों को व्यक्त किया गया है।

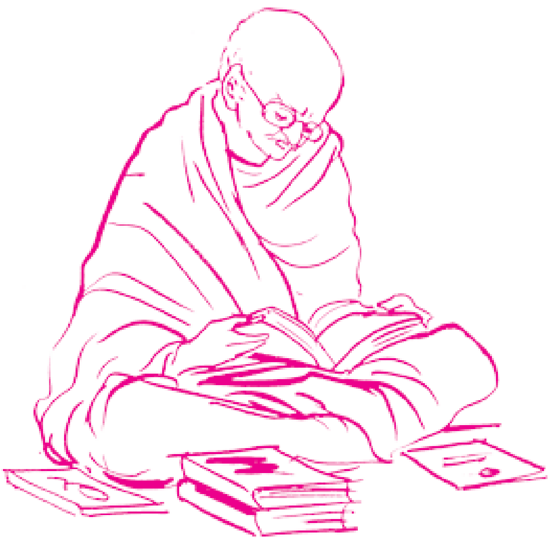

हे नम्रता के सम्राट!
जीर्ण-शीर्ण कुटिया के निवासी,
हमें इस योग्य बना कि हम
गंगा, ब्रह्मपुत्र यमुना के जल से सिंचित
इस देश में
सब जगह तेरा अनुभव कर सकें।

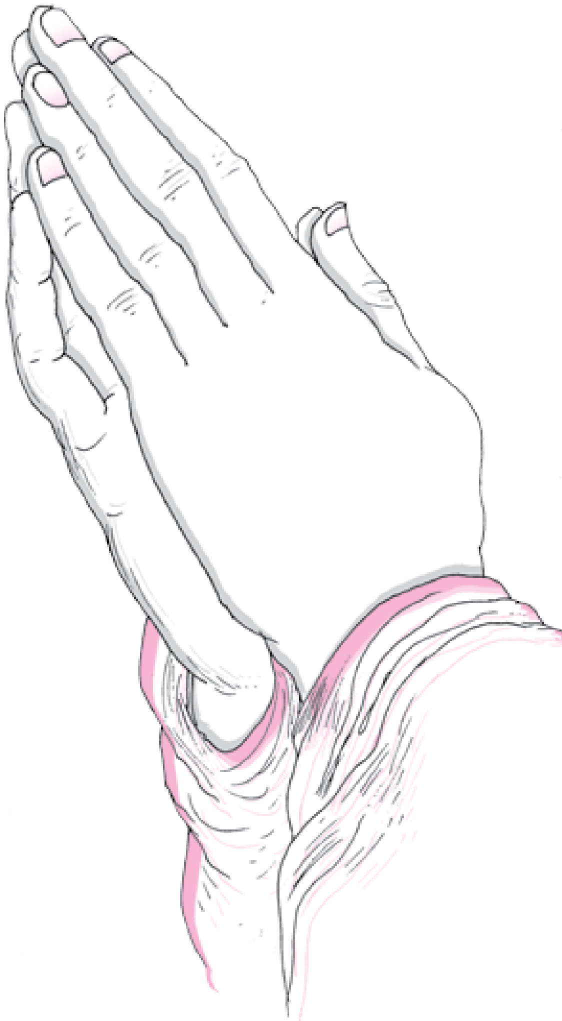

हमें मदद कर
कि हम ग्रहणशील बन सकें।
हमें उदार बना और खुला दिल दे;
हमें अपनी-जैसी नम्रता दे।

ऐसी दया कर कि हम
भारत के हर अदना आदमी से
एकरूप होने की शक्ति पा जायें
और सदा उसकी
सेवा के लिए तत्पर रहें।

हे प्रभु! जब आदमी
समर्पित होकर
स्वयं शून्य बन जाता है,
तब तू उसे अपना हाथ देता है;
हमें इसलिए
समर्पित होने की शक्ति
और जनता की सेवा में
खप जाने की भक्ति दे;
हमें उसका अंतरंग सखा
और सेवक बना।

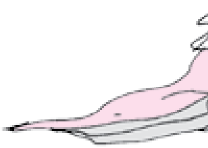

हमें अपनी विभूतियों का पात्र
और भाजन बना कि
हम नि:स्व होकर
साकार अकिंचन बनें
और समझकर प्यार कर सकें
इस देश को,
इस धरती को।

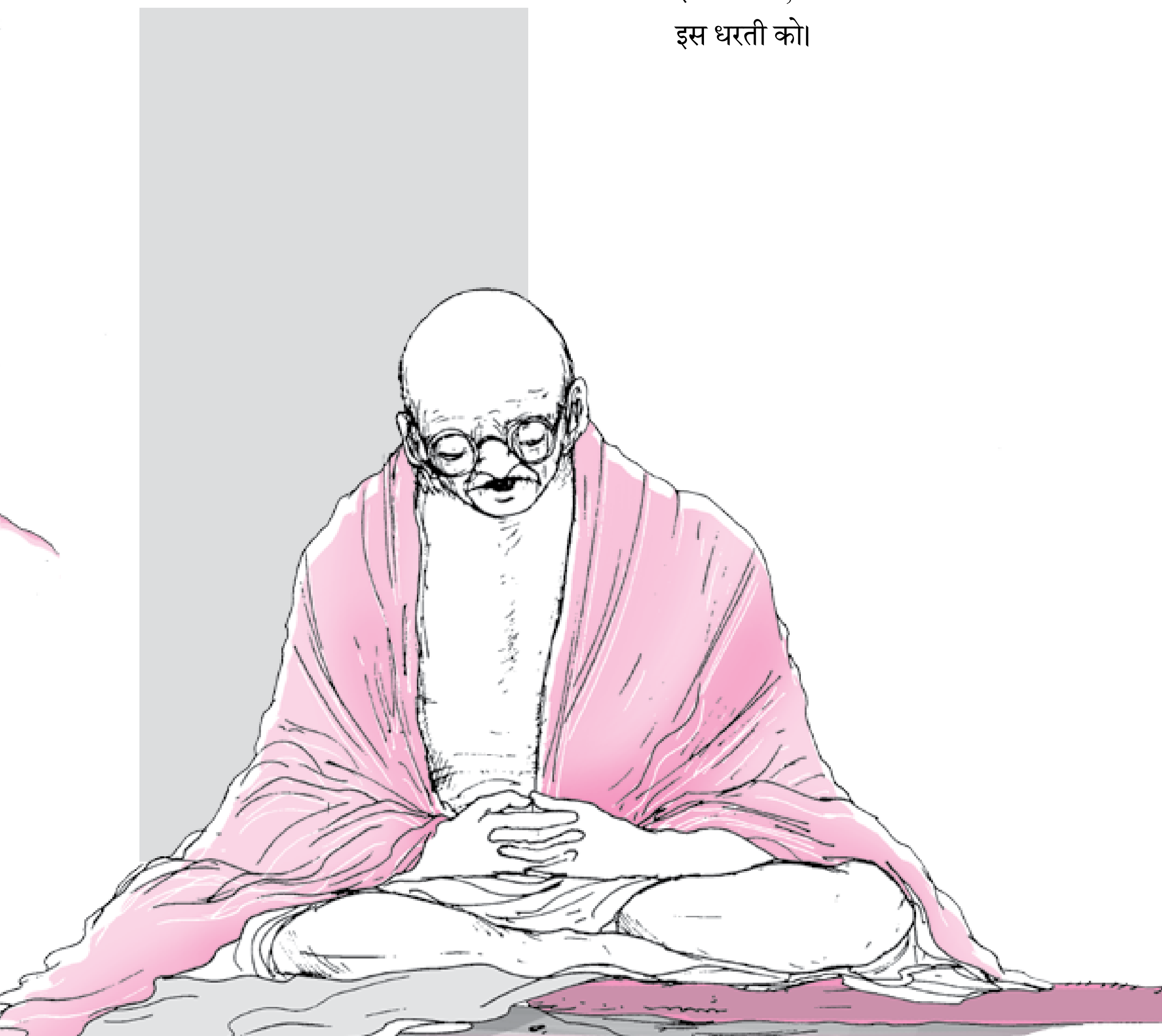

485. A PRAYER[1]

[On or before *September 12, 1934*][2]

Lord of humility, dwelling in the little pariah hut, help us to search for Thee throughout that fair land watered by Ganges, Brahmaputra and Jumna. Give us receptiveness, give us open-heartedness, give us Thy humility, give us the ability and willingness to identify ourselves with the masses of India.

O God, who does help only when man feels utterly humble, grant that we may not be isolated from the people we would serve as servants and friends. Let us be embodiments of self-sacrifice, embodiments of godliness, humility personified, that we may know the land better and love it more.

Bapu—Conversations and Correspondence, pp. 88-9

[1]& [2] The prayer was an enclosure to "Letter to F. Mary Barr", pp. 437-8. In the source, Mary Barr explains: "Miss Linforth is an Englishwoman who was then working at a Hyderabad Welfare Centre run by an inter-communal committee of Hindus, Mussalmans, Christians and Parsis. She had asked me to get Gandhi to give her a message. So he enclosed in his letter to me this little prayer, which she framed and put in her Centre."

[3] The addressee had sought Gandhiji's permission to go back to Khurja to attend to his ailing son.

[4] *Vide* p. 113.

The Collected Works of Mahatma Gandhi
Vol. - 58

युगावतार

सोहनलाल द्विवेदी

गाँधीजी की एक आवाज़ पर करोड़ों हिंदुस्तानी उनके पीछे चल पड़ते थे। वे आज भी करोड़ों लोगों की आवाज़ और अक्षय ऊर्जा के स्रोत बने हुए हैं। यह जन-नायक गाँधीजी की लोकप्रियता और प्रेरणा है, जिससे करोड़ों हिंदुस्तानी संचालित हैं। वे नयी चेतना और नयी दृष्टि से मानव जीवन को समृद्ध करने वाले युग-निर्माता थे। ऐसे जुझारू और करुणामय गाँधीजी से राजसत्ता डाँवाँडोल होती रही। उनकी अहिंसक रणभेरी के बजते ही अस्त्रों-शस्त्रों से सुसज्जित सेनाएँ अपने घरों को लौटने लगती थीं। ऐसे जन-नायक गाँधीजी के अहिंसक विचारों से नये स्वाधीन भारत का जन्म हुआ है।

चल पड़े जिधर दो डग, मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि, गड़ गए कोटि दृग उसी ओर

जिसके शिर पर निज धरा हाथ, उसके शिर रक्षक कोटि हाथ
जिस पर निज मस्तक झुका दिया, झुक गए उसी पर कोटि माथ

हे कोटि चरण, हे कोटि बाहु! हे कोटि रूप! हे कोटि नाम!
तुम एक मूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि, हे कोटिमूर्ति तुमको प्रणाम!

युग बढ़ा तुम्हारी हँसी देख, युग हटा तुम्हारी भृकुटि देख
तुम अचल मेखला बन भू की, खींचते काल पर अमिट रेख!

तुम बोल उठे, युग बोल उठा, तुम मौन बने, युग मौन बना
कुछ कर्म तुम्हारे संचित कर, युग कर्म जगा, युग धर्म तना!

युग-परिवर्तक! युग-संस्थापक! युग-संचालक! हे युगाधार!
युग-निर्माता! युग-मूर्ति! तुम्हें, युग-युग तक, युग का नमस्कार!

तुम युग-युग की रूढ़ियाँ तोड़, नित रचते रहते नयी सृष्टि
उठती नवजीवन की नींवें, ले नवचेतन की दिव्य दृष्टि

धर्माडंबर के खँडहर पर, कर पद प्रहार, कर धरा ध्वस्त
मानवता का पावन मंदिर, निर्माण कर रहे सृजन व्यस्त

बढ़ते ही जाते दिग्विजयी! गढ़ते तुम अपना रामराज
आत्माहुति के मणि-माणिक से, मढ़ते जननी का स्वर्ण ताज

तुम कालचक्र के रक्त सने, दशनों को कर से पकड़ सुदृढ़
मानव को दानव के मुँह से, ला रहे खींच बाहर बढ़-बढ़

पिसती कराहती जगती के, प्राणों में भरते अभयदान
अधमरे देखते हैं तुमको, किसने आकर यह किया त्राण?

पद सुदृढ़, सुदृढ़ कर-संपुट से, तुम कालचक्र की चाल रोक
नित महाकाल की छाती पर, लिखते करुणा के पुण्य श्लोक

कँपता असत्य, कँपती मिथ्या, बर्बरता कँपती है थर-थर
कँपते सिंहासन, राजमुकुट कँपते, खिसके आते भू पर

हैं अस्त्र-शस्त्र कुंठित लुंठित, सेनाएँ करतीं गृह प्रयाण
रणभेरी बजती है तेरी, उड़ता है तेरा ध्वज निशान!

हे युग-द्रष्टा! हे युग-स्रष्टा! पढ़ते कैसा यह मोक्ष मंत्र?
इस राजतंत्र के खँडहर में, उगता अभिनव भारत स्वतंत्र!

अशोक की चिंता

जयशंकर प्रसाद

'अशोक की चिंता' कविता में गाँधीजी की करुणा, अहिंसा और मानवता के प्रति प्रेम एवं नैतिक मूल्यों की चिंता दिखायी देती है। मगध ने अपने हिंसक युद्ध अभियानों से कलिंग पर विजय तो प्राप्त कर ली, पर मानव मन पर शासन न कर सका। जो जय-पराजय के हिंसक अभियानों को त्याग नहीं पाता, वह प्राणियों को सुख और शांति भी नहीं दे सकता। गाँधीजी इन्हीं अमानवीय आचरणों से दुनिया की मुक्ति का स्वप्न देखते थे। 'अशोक की चिंता' कविता गाँधीजी की मानवीय करुणा और नैतिकता का आख्यान है।

जलता है यह जीवन-पतंग।

जीवन कितना! अति लघु क्षण
ये शलभ पुंज से कण-कण
तृष्णा वह अनल-शिखा बन
दिखलाती रक्तिम यौवन।
जलने की क्यों न उठे उमंग?

है ऊँचा आज मगध-शिर
पदतल में विजित पड़ा गिरि
दूरागत क्रंदन-ध्वनि फिर
क्यों गूँज रही है अस्थिर
कर विजयी का अभिमान भंग?

इन प्यासी तलवारों से
इनकी पैनी धारों से
निर्दयता की मारों से
उन हिंसक हुंकारों से
नत मस्तक आज हुआ कलिंग।

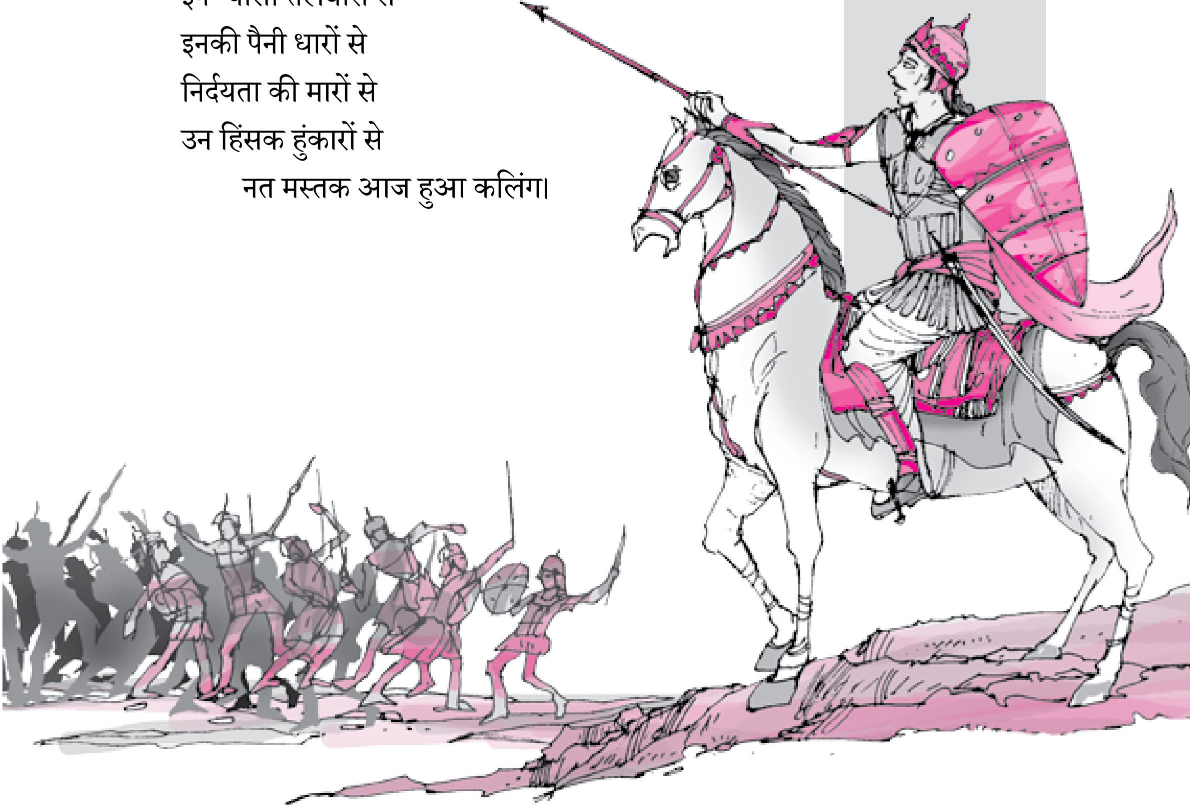

यह सुख कैसा शासन का?
शासन रे मानव मन का
गिरि-भार बना-सा तिनका
यह घटाटोप दो दिन का
फिर रवि-शशि किरणों का प्रसंग।

यह महादंभ का दानव
पीकर अनंग का आसव
कर चुका महाभीषण रव
सुख दे प्राणी को मानव
तज विजय पराजय का कुढंग।

संकेत कौन दिखलाती
मुकुटों को सहज गिराती
जयमाला सूखी जाती
नश्वरता गीत सुनाती
तब नहीं थिरकते हैं तुरंग।

वैभव की यह मधुशाला
जग पागल होने वाला
अब गिरा– उठा मतवाला
प्याले में फिर भी हाला
यह क्षणिक चल रहा राग-रंग।

काली-काली अलकों में
आलस, मद नत पलकों में
मणि मुक्ता की झलकों में
सुख की प्यासी ललकों में
देखा क्षण-भंगुर है तरंग।

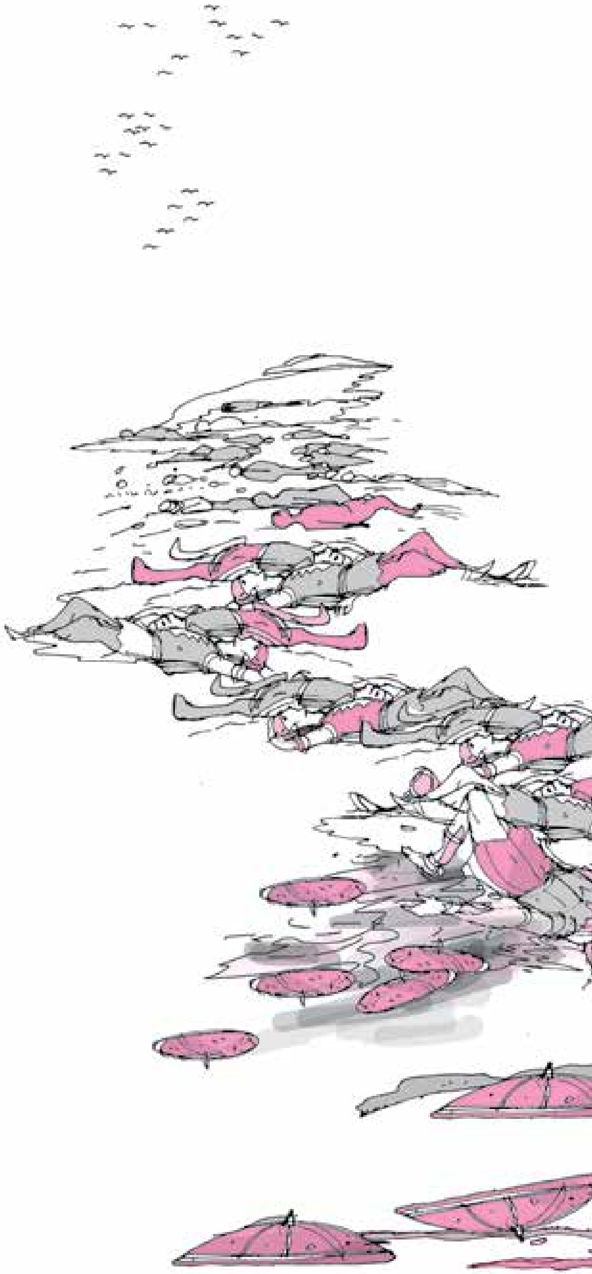

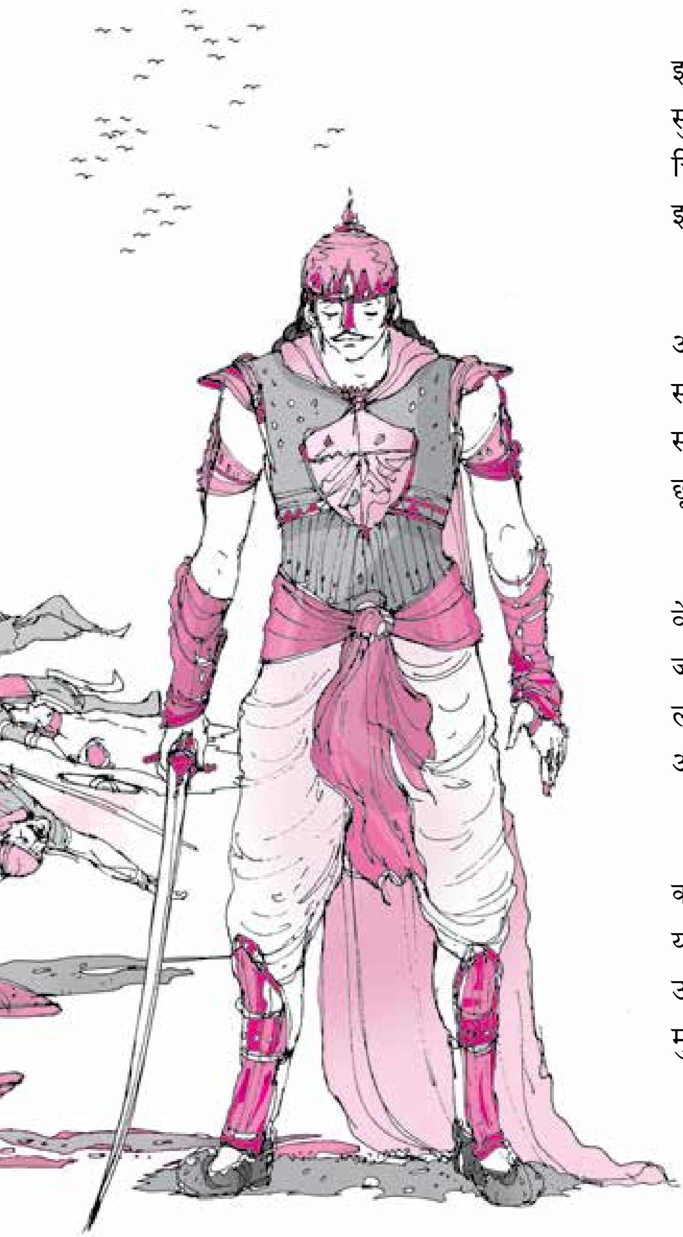

फिर निर्जन उत्सव-शाला
नीरव नूपुर श्लथ माला
सो जाती है मधु बाला
सूखा लुढ़का है प्याला
बजती वीणा न वहाँ मृदंग।

इस नील विषाद गगन में
सुख चपला-सा दुख-घन में
चिर विरह नवीन मिलन में
इस मरु मरीचिका-वन में
उलझा है चंचल मन-कुरंग।

आँसू कन-कन ले छल-छल
सरिता भर रही दृगंचल
सब अपने में हैं चंचल
छूटे जाते सूने पल
खाली न काल का है निषंग।

वेदना विकल यह चेतन
जड़ का पीड़ा से नर्तन
लय-सीमा में यह कंपन
अभिनयमय है परिवर्तन
चल रहा यही कब से कुढंग।

करुणा गाथा गाती है
यह वायु बही जाती है
उषा उदास आती है
मुख पीला ले जाती है
बन मधु पिंगल संध्या सुरंग।

आलोक किरन है आती
रेशमी डोर खिंच जाती
दृग पुतली कुछ नच पाती
फिर तम पट में छिप जाती
कलरव कर सो जाते विहंग।

जब पल-भर का है मिलना
फिर चिर वियोग में झिलना
एक ही प्रात है खिलना
फिर सूख धूल में मिलना
तब क्यों चटकीला सुमन रंग?

संसृति के विक्षत पग रे!
वह चलती है डगमग रे!
अनुलेप सदृश तू लग रे!
मृदु दल बिखेर इस मग रे!
कर चुके मधुर मधुपान भृंग।

भुनती वसुधा तपते नग
दुखिया है सारा अग-जग
कंटक मिलते हैं प्रति पग
जलती सिकता का यह मग
बह जा बन करुणा की तरंग।
जलता है यह जीवन-पतंग।

बापू के प्रति

सुमित्रानंदन पंत

गाँधीजी के सपनों की दुनिया साकार नहीं हो सकी। इसलिए यह दुनिया आज भी समस्याओं से मुक्त नहीं है। अपने वैज्ञानिक ज्ञान, भौतिक संसाधनों एवं वैभव में चरमोत्कर्ष पर पहुँचने के बाद भी दुनिया दुख, दीनता और अशांति से जूझ रही है। भौतिकता के मद में मानवीय भावनाओं का विकास नहीं हो सका है। इसलिए विश्व को एक नये भाव, एक नयी दृष्टि की आवश्यकता है, जिससे मानवता का विकास हो सके। आज दुनिया की निगाहें गाँधीजी के विचारों और सिद्धांतों पर टिकी हुई हैं जो मानवीयता की नयी ऊर्जा से भरी हैं।

चरमोन्नत जग में जब कि आज विज्ञान ज्ञान
बहु भौतिक साधन, यंत्र, यान, वैभव महान
सेवक हैं विद्युत, वाष्प शक्ति: धन, बल नितांत,
फिर क्यों जग में उत्पीड़न? जीवन यों अशांत?

मानव ने पायी देश-काल पर जय निश्चय,
मानव के पास नहीं मानव का आज हृदय!
चर्वित उसका विज्ञान ज्ञान, वह नहीं पचित
भौतिक मद से मानव आत्मा हो गई विजित!

है श्लाघ्य मनुज का भौतिक संचय का प्रयास,
मानवी भावना का क्या पर उसमें विकास?
चाहिए विश्व को आज भाव का नवोन्मेष,
मानव उर में फिर मानवता का हो प्रवेश!

बापू! तुम पर हैं आज लगे जग के लोचन
तुम खोल नहीं जाओगे मानव के बंधन?

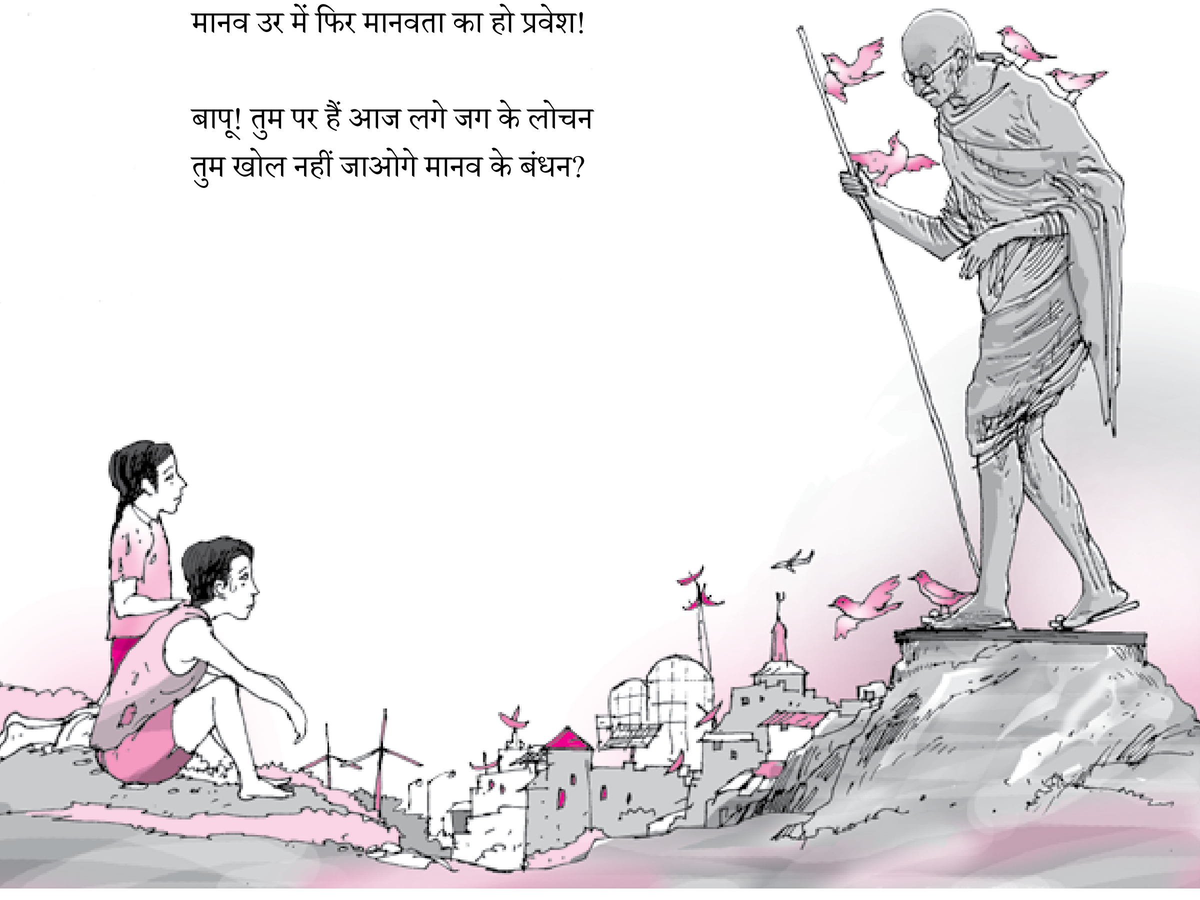

गाँधी तो हमारा भोला है

अकबर 'इलाहाबादी'

स्वतंत्रता आंदोलन में गाँधीजी ने सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह का रास्ता चुना। उर्दू के प्रसिद्ध कवि अकबर 'इलाहाबादी' ने 'गाँधी तो हमारा भोला है' कविता में गाँधी के सत्य और अहिंसा के विचारों का उल्लेख करते हुए अंग्रेज़ी हुकूमत की चालाकियों, छल-प्रपंच की नीतियों तथा जनता को बहलाने के तरीकों का पर्दाफ़ाश किया है। कविता एक तरफ गाँधी की सच्चाई तथा दूसरी तरफ अंग्रेज़ी हुकूमत की धूर्तता को रेखांकित करती है।

गाँधी तो हमारा भोला है
और शेख ने बदला चोला है
देखो तो खुदा क्या करता है
साहब ने भी दफ़्तर खोला है।

आनर की पहेली बूझी है
हर इक को तअल्ली सूझी है
जो चोकर था, वह सूजी है
जो माशा था, वह तोला है।

यारों में रकम अब कटती है
इस वक्त हुकूमत बटती है
कंपू से तो ज़ुल्मत हटती है
बे-नूर मोहल्ला-टोला है।

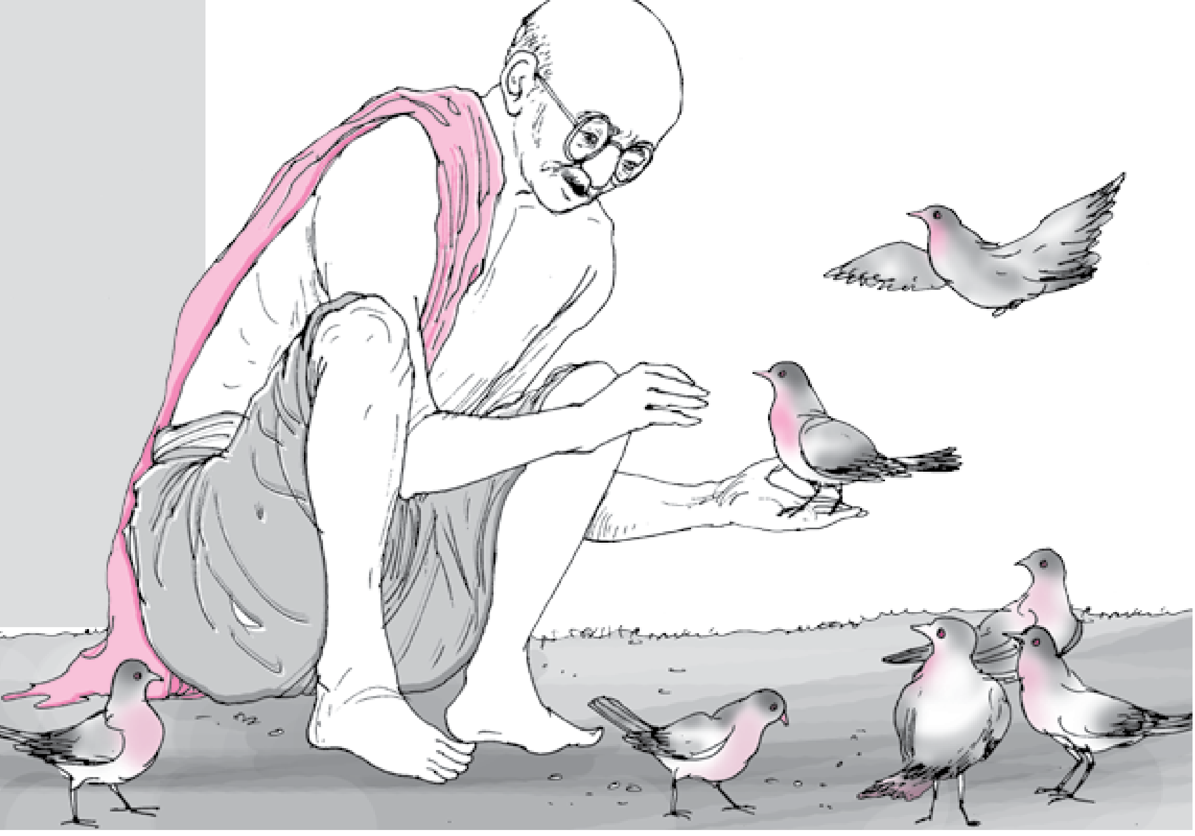

मेरे जन-नायक की वाणी

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

आज़ादी संबंधी गाँधीजी के विचार, सत्य-अहिंसा और सत्याग्रह पर टिके थे। सत्य की ऐसी आवाज़ पहले नहीं सुनी गई थी। इन्हीं अर्थों में गाँधीजी जन-नायक हैं। कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने अपनी कविता में जन-नायक गाँधीजी की वाणी की व्याप्ति और महत्ता का वर्णन किया है। उनकी वाणी में नव-निर्माण और परिवर्तन का स्वर मुखर है।

गहन नील अंबर में गरजी, मेरे जन-नायक की वाणी!
अनिल, अनल, जल, थल में तरजी, मेरे जन-नायक की वाणी!

जागो! जागो! अमृत-सुवन तुम, जागो! जागो! सोने वालों
जागो! तुम सिंहों के छौनो, जागो! सब कुछ खोने वालों
जागो! देश-काल-निर्माता, जागो! तुम निज भाग्य-विधाता!
जागो! इतिहासों के ज्ञाता, जागो! तत्व-ज्ञान के दाता
जागो! हिंदू-सिक्ख-मुसलमां, जागो, मेरे मानव प्राणी!
अनिल, अनल, जल, थल में गरजी, यों मम जन-नायक की वाणी!

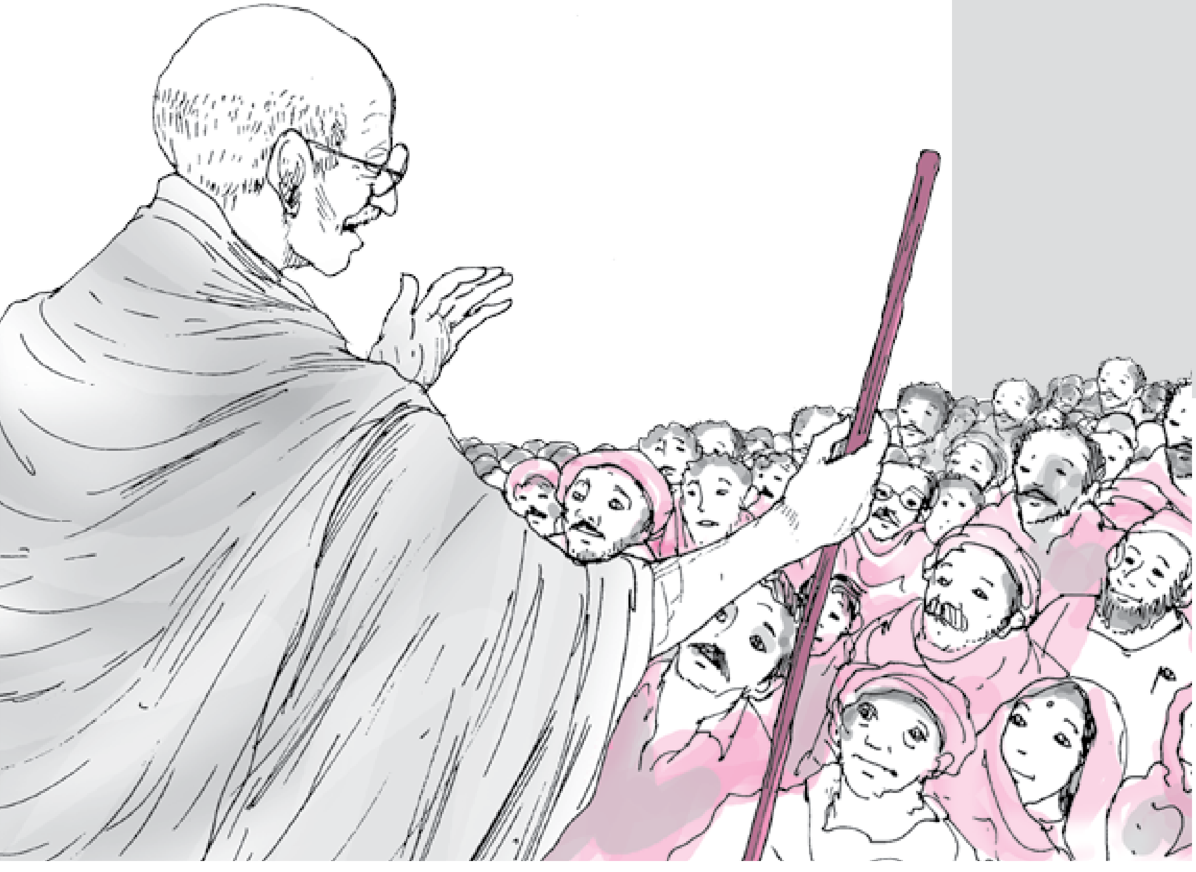

हिम-गिरि से टकराकर व्यापी, इस वाणी की ध्वनि जग-भर में
गूँजी यह ध्वनि जग मनुजों के हृदय-हृदय में, अंतरतर में
गरजीं हिंद महासागर की प्रतिध्वनिमय उत्ताल तरंगें
जग के महार्णवों में उमड़ीं अभिनय वीचि-विलास उमंगें
लेकर यह संदेश सुहावन चहुँ-दिशि बही हवा रस-सानी!
गहन नील अंबर में गरजी, मेंरे जन-नायक की वाणी!

ये नव-नव उद्बोधन के स्वर, नव-निर्माण प्रेरणाकारी
ये आत्मार्पण के पावन स्वर, ये नित नवल स्फूर्ति-संचारी
महानाश का यह संदेशा, यह निजत्व प्राप्ति का निमंत्रण
यह अस्वीकृति की गंभीर-ध्वनि, यह विप्लव का रुद्र-प्रभंजन
अब तक तुमने क्या न सुनी यह, भय-भंजन-वाणी कल्याणी?
गहन नील नभ में गरजी, मेंरे जन-नायक की वाणी!

मेरा पूरब, मेरा पच्छिम, मेरा दक्खिन, मेरा उत्तर
मेरी गंगा, मेरी यमुना, मेंरे सागर, मेंरे भूधर
आज ये सभी उद्घोषित हैं, मेंरे जन-नायक के स्वर से
गूँजी है यह मंद्र महाध्वनि, युग-युग के सागर-मंथन से
यह वाणी है मम मानस के अमर प्राण की अमिट निशानी!
अनिल, अनल, जल, थल में गरजी, मेंरे जन-नायक की वाणी!

निबिड़ गहन, घन, नैश तिमिर का वक्ष चीरते ये स्वर आये
अति जाज्वल्यमान दिनमणि की, किरणें ये अपने संग लाये
अंधकार का भार हट गया, जन-गण-मन-सरसिज मुसकाये
हृदय-सरोवर हुआ तरंगित, नयनों में नव-नव रंग छाये
नस-नस में नव रक्त प्रवाहित मानव बने आत्म-अभिमानी!
गहन नील अंबर में गरजी, मेंरे जन-नायक की वाणी!

गणतंत्र दिवस

हरिवंशराय बच्चन

आज़ादी के आंदोलन के दौरान गाँधीजी का उदय एक जन-नायक के रूप में हुआ। उनकी प्रेरणा से देश नींद से जाग उठा और दासता की जंजीरें एक-एक कर टूटने लगीं। गाँधीजी की आज़ादी का रास्ता अंहिसा के सिद्धांतों और व्यवहारों से होकर गुजरता है, जिसमें शत्रुता और बदले की भावना के बजाय करुणा, क्षमा और पर-हित का पाठ शामिल है। आज़ादी का मिलना आज हर्ष एवं मंगलगान का विषय तो है, पर यह मंदिर में प्रतिष्ठित कोई मूर्ति नहीं है, जिसकी पूजा करनी होती है। आज़ादी प्राप्त कर लेने से लक्ष्य खत्म नहीं हो जाता, बल्कि वह बड़ी जिम्मेदारी होती है, जिसके लिए लगातार आगे बढ़ना होता है।

एक और जंजीर तड़कती है, भारत माँ की जय बोलो।

इन जंजीरों की चर्चा में कितनों ने निज हाथ बँधाये
कितनों ने इनको छूने के कारण कारागार बसाये
इन्हें पकड़ने में कितनों ने लाठी खायी, कोड़े ओड़े
और इन्हें झटके देने में कितनों ने निज प्राण गँवाये!
किंतु शहीदों की आहों से शापित लोहा, कच्चा धागा।
एक और जंजीर तड़कती है, भारत माँ की जय बोलो।

जय बोलो उस धीर व्रती की जिसने सोता देश जगाया
जिसने मिट्टी के पुतलों को वीरों का बाना पहनाया
जिसने आज़ादी लेने की एक निराली राह निकाली
और स्वयं उस पर चलने में जिसने अपना शीश चढ़ाया
घृणा मिटाने को दुनिया से लिखा लहू से जिसने अपने
"जो कि तुम्हारे हित विष घोले, तुम उसके हित अमृत घोलो"।
एक और जंजीर तड़कती है, भारत माँ की जय बोलो।

कठिन नहीं होता है बाहर की बाधा को दूर भगाना
कठिन नहीं होता है बाहर के बंधन को काट हटाना
गैरों से कहना क्या मुश्किल अपने घर की राह सिधारें
किंतु नहीं पहचाना जाता अपनों में बैठा बेगाना
बाहर जब बेड़ी पड़ती है भीतर भी गाँठें लग जातीं
बाहर के सब बंधन टूटे, भीतर के अब बंधन खोलो।
एक और जंजीर तड़कती है, भारत माँ की जय बोलो।

कटी बेड़ियाँ औ' हथकड़ियाँ, हर्ष मनाओ, मंगल गाओ
किंतु यहाँ पर लक्ष्य नहीं है, आगे पथ पर पाँव बढ़ाओ
आज़ादी वह मूर्ति नहीं है जो बैठी रहती मंदिर में
उसकी पूजा करनी है तो नक्षत्रों से होड़ लगाओ
हल्का फूल नहीं आज़ादी, वह है भारी जिम्मेदारी
उसे उठाने को कंधों के, भुजदंडों के बल को तोलो।
एक और जंजीर तड़कती है, भारत माँ की जय बोलो।

तुम कागज़ पर लिखते हो

भवानी प्रसाद मिश्र

गाँधीजी के जीवन में स्वावलंबन तथा श्रम का विशेष महत्व रहा है। उनका स्पष्ट विचार था कि बौद्धिक श्रम तथा शारीरिक श्रम में कोई भेद नहीं होता। बल्कि उनका मानना था कि शारीरिक श्रम के बिना बौद्धिक श्रम संभव ही नहीं है। स्वावलंबन उनके चिंतन का आधार था। भवानी प्रसाद मिश्र की कविता मूलत: गाँधीजी के इस चिंतन को रचनात्मक तरीके से प्रस्तुत करती है।

सूत कातते थे गाँधीजी
कपड़ा बुनते थे,
और कपास जुलाहों के जैसा ही
धुनते थे।

चुनते थे अनाज के कंकर
चक्की पीसते थे,
आश्रम के अनाज याने
आश्रम में पिसते थे।

जिल्द बाँध लेना पुस्तक की
उनको आता था,
भंगी-काम सफ़ाई से
नित करना भाता था।

ऐसे थे गाँधीजी
ऐसा था उनका आश्रम,
गाँधीजी के लेखे
पूजा के समान था श्रम।

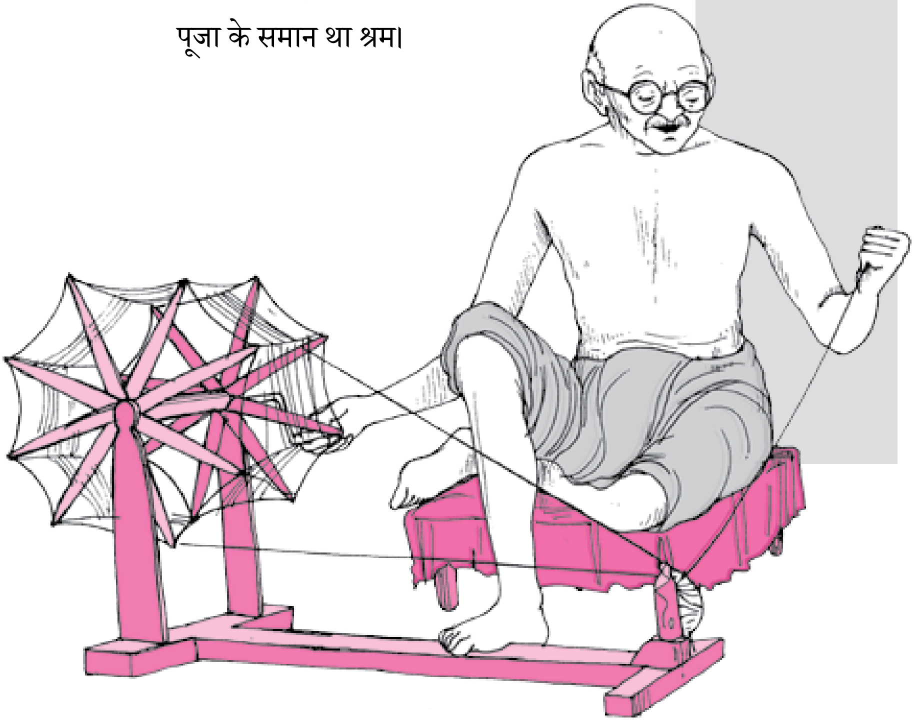

कहानियाँ

हार की जीत

सुदर्शन

'हृदय परिवर्तन' गाँधीजी के चिंतन का महत्वपूर्ण सूत्र है। वे मानते थे कि बुरे से बुरे व्यक्ति में भी इंसानियत रहती है। निरंतर प्रेम और उदार व्यवहार से उसे बदला जा सकता है। 'हार की जीत' कहानी इस बात की पुष्टि करती है। कहानी के चरित्र बाबा भारती का प्रेमपूर्ण व्यवहार और गरीब-बीमार के प्रति करुणा को देखकर खड्गसिंह जैसे डाकू का भी मन बदल जाता है।

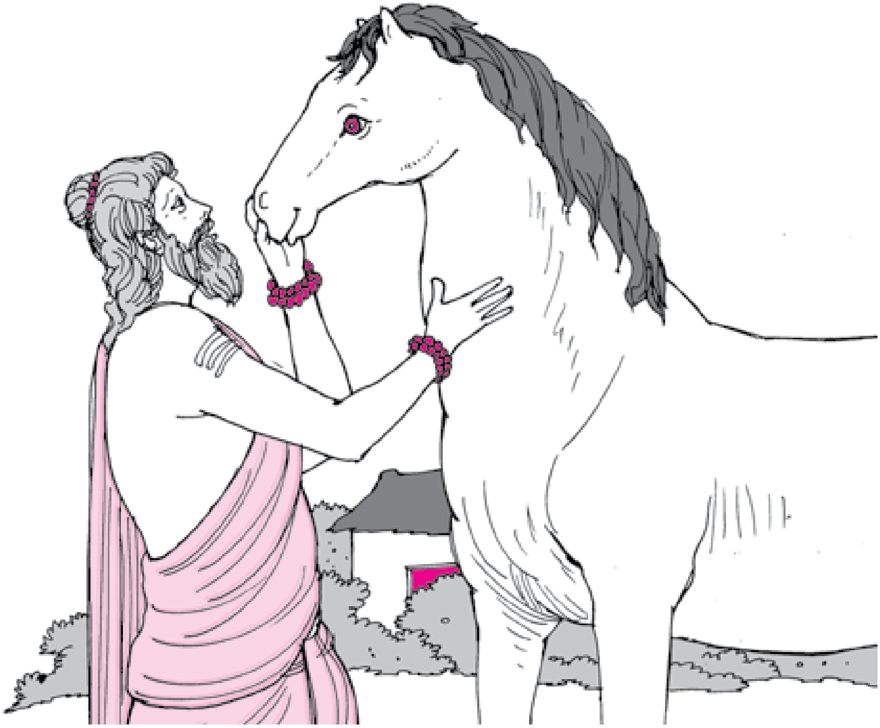

माँ को अपने बेटे और किसान को अपने लहलहाते खेत देखकर जो आनंद आता है, वही आनंद बाबा भारती को अपना घोड़ा देखकर आता था। भगवद्भजन से जो समय बचता, वह घोड़े को अर्पण हो जाता। वह घोड़ा बड़ा सुंदर था, बड़ा बलवान। उसके जोड़ का घोड़ा सारे इलाके में न था। बाबा भारती उसे 'सुलतान' कहकर पुकारते, अपने हाथ से खरहरा करते, खुद दाना खिलाते और देख-देखकर प्रसन्न होते थे। उन्होंने रुपया, माल, असबाब, जमीन आदि अपना सब-कुछ छोड़ दिया था, यहाँ तक कि उन्हें नगर के जीवन से भी घृणा थी। अब गाँव से बाहर एक छोटे-से मंदिर में रहते और भगवान का भजन करते थे। "मैं सुलतान बिना नहीं रह सकूँगा", उन्हें ऐसी भ्रांति-सी हो गयी थी। वे उसकी चाल पर लट्टू थे। कहते, "ऐसा चलता है जैसे मोर घटा को देखकर नाच रहा हो।" जब तक संध्या समय सुलतान पर चढ़कर आठ-दस मील का चक्कर न लगा लेते, उन्हें चैन न आता।

खड्गसिंह उस इलाके का प्रसिद्ध डाकू था। लोग उसका नाम सुनकर काँपते थे। होते-होते सुलतान की कीर्ति उसके कानों तक भी पहुँची। उसका हृदय उसे देखने के लिए अधीर हो उठा। वह एक दिन दोपहर के समय बाबा भारती के पास पहुँचा और नमस्कार करके बैठ गया।

"बाबा भारती ने पूछा, "खड्गसिंह, क्या हाल है?"

"खड्गसिंह ने सिर झुकाकर उत्तर दिया, "आपकी दया है।"

"कहो, इधर कैसे आ गये?"

"सुलतान की चाह खींच लायी।"

"विचित्र जानवर है। देखोगे तो प्रसन्न हो जाओगे।"

"मैंने भी बड़ी प्रशंसा सुनी है।"

"उसकी चाल तुम्हारा मन मोह लेगी!"

"कहते हैं देखने में भी बड़ा सुंदर है।"

"क्या कहना! जो उसे एक बार देख लेता है, उसके हृदय पर उसकी छवि अंकित हो जाती है।"

"बहुत दिनों से अभिलाषा थी, आज उपस्थित हो सका हूँ।"

बाबा भारती और खड्‌गसिंह अस्तबल में पहुँचे। बाबा ने घोड़ा दिखाया घमंड से, खड्‌गसिंह ने देखा आश्चर्य से। उसने सहस्त्रों घोड़े देखे थे, परंतु ऐसा बाँका घोड़ा उसकी आँखों से कभी न गुजरा था। सोचने लगा, भाग्य की बात है। ऐसा घोड़ा खड्‌गसिंह के पास होना चाहिए था। इस साधु को ऐसी चीज़ों से क्या लाभ! कुछ देर तक आश्चर्य से चुपचाप खड़ा रहा। इसके पश्चात उसके हृदय में हलचल होने लगी। बालकों की-सी अधीरता से बोला, "परंतु बाबाजी, इसकी चाल न देखी तो क्या!"

बाबाजी भी मनुष्य ही थे। अपनी वस्तु की प्रशंसा दूसरे के मुख से सुनने के लिए उनका हृदय अधीर हो गया। घोड़े को खोलकर बाहर गये। घोड़ा वायु-वेग से उड़ने लगा। उसकी चाल देखकर खड्‌गसिंह के हृदय पर साँप लोट गया। वह डाकू था और जो वस्तु उसे पसंद आ जाये, उस पर वह अपना अधिकार समझता था। उसके पास बाहुबल था और आदमी थे। जाते-जाते उसने कहा, "बाबाजी, मैं यह घोड़ा आपके पास न रहने दूँगा।"

बाबा भारती डर गये। अब उन्हें रात को नींद न आती। सारी रात अस्तबल की रखवाली में कटने लगी। प्रतिक्षण खड्‌गसिंह का भय लगा रहता, परंतु कई मास बीत गये और वह न आया। यहाँ तक कि बाबा भारती कुछ असावधान हो गये और इस भय को स्वप्न के भय की नाईं मिथ्या समझने लगे।

संध्या का समय था। बाबा भारती सुलतान की पीठ पर सवार होकर घूमने जा रहे थे। इस समय उनकी आँखों में चमक थी, मुख पर प्रसन्नता। कभी घोड़े के शरीर को देखते, कभी उसके रंग को और मन में फूले न समाते थे।

सहसा एक ओर से आवाज़ आयी, "ओ बाबा, इस कँगले की सुनते जाना।"

आवाज़ में करुणा थी। बाबा ने घोड़े को रोक लिया। देखा, एक अपाहिज वृक्ष की छाया में पड़ा कराह रहा है। बोले, "क्यों तुम्हें क्या कष्ट है?"

अपाहिज ने हाथ जोड़कर कहा, "बाबा, मैं दुखिया हूँ। मुझ पर दया करो। रामावाला यहाँ से तीन मील है, मुझे वहाँ जाना है। घोड़े पर चढ़ा लो, परमात्मा भला करेगा।"

"वहाँ तुम्हारा कौन है?"

"दुर्गादत्त वैद्य का नाम आपने सुना होगा। मैं उनका सौतेला भाई हूँ।"

बाबा भारती ने घोड़े से उतरकर अपाहिज को घोड़े पर सवार किया और स्वयं उसकी लगाम पकड़कर धीरे-धीरे चलने लगे।

सहसा उन्हें एक झटका-सा लगा और लगाम हाथ से छूट गई। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि अपाहिज घोड़े की पीठ पर तनकर बैठा है और घोड़े को दौड़ाये लिए जा रहा है। उनके मुख से भय, विस्मय और निराशा से मिली हुई चीख निकल गयी। वह अपाहिज डाकू खड्गसिंह था।

बाबा भारती कुछ देर तक चुप रहे और इसके पश्चात कुछ निश्चय करके पूरे बल से चिल्लाकर बोले, "ज़रा ठहर जाओ।"

खड्गसिंह ने यह आवाज़ सुनकर घोड़ा रोक लिया और उसकी गरदन पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा, "बाबाजी, यह घोड़ा अब न दूँगा।"

"परंतु एक बात सुनते जाओ।"

खड्गसिंह ठहर गया। बाबा भारती ने निकट जाकर उसकी ओर ऐसी आँखों से देखा जैसे बकरा कसाई की ओर देखता है और कहा, "यह घोड़ा तुम्हारा हो चुका है। मैं तुमसे इसे वापस

करने के लिए न कहूँगा। परंतु खड्गसिंह, केवल एक प्रार्थना करता हूँ। उसे अस्वीकार न करना, नहीं तो मेरा दिल टूट जायेगा।"

"बाबाजी, आज्ञा कीजिये, मैं आपका दास हूँ, केवल घोड़ा न दूँगा।"

"अब घोड़े का नाम न लो। मैं तुमसे इस विषय में कुछ न कहूँगा। मेरी प्रार्थना केवल यह है कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।"

खड्गसिंह का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया। उसका विचार था कि उसे घोड़े को लेकर यहाँ से भागना पड़ेगा, परंतु बाबा भारती ने स्वयं उससे कहा कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना। इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? खड्गसिंह ने बहुत सोचा, बहुत सिर मारा, परंतु कुछ समझ न सका। हारकर उसने अपनी आँखें बाबा भारती के मुख पर गड़ा दीं और पूछा, "बाबाजी इसमें आपको क्या डर है?"

सुनकर बाबा भारती ने उत्तर दिया, "लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया तो वे किसी दीन-दुखी पर विश्वास न करेंगे।" यह कहते-कहते उन्होंने सुलतान की ओर से इस तरह मुँह मोड़ लिया जैसे उनका उससे कभी कोई संबंध ही न रहा हो।

बाबा भारती चले गये। परंतु उनके शब्द खड्गसिंह के कानों में उसी प्रकार गूँज रहे थे। सोचता था, कैसे ऊँचे विचार हैं, कैसा पवित्र भाव है! उन्हें इस घोड़े से प्रेम था, इसे देखकर उनका मुख फूल की नाईं खिल जाता था। कहते थे, "इसके बिना मैं रह न सकूँगा।" इसकी रखवाली में वे कई रात सोये नहीं। भजन-भक्ति न कर रखवाली करते रहे। परंतु आज उनके मुख पर दुख की रेखा तक न दिखायी पड़ती थी। उन्हें केवल यह ख्याल था कि कहीं लोग दीन-दुखियों पर विश्वास करना न छोड़ दें। ऐसा मनुष्य, मनुष्य नहीं देवता है।

रात्रि के अंधकार में खड्गसिंह बाबा भारती के मंदिर में पहुँचा। चारों ओर सन्नाटा था। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। थोड़ी दूर पर गाँवों के कुत्ते भौंक रहे थे। मंदिर के अंदर कोई शब्द सुनायी न देता था। खड्गसिंह सुलतान की बाग पकड़े हुए था। वह धीरे-धीरे अस्तबल के फाटक पर पहुँचा। फाटक खुला पड़ा था। किसी समय वहाँ बाबा भारती स्वयं लाठी लेकर पहरा देते थे, परंतु आज उन्हें किसी चोरी, किसी डाके का भय न था। खड्गसिंह ने आगे बढ़कर सुलतान को उसके स्थान पर बाँध दिया और बाहर निकलकर सावधानी से फाटक बंद कर दिया। इस समय उसकी आँखों में नेकी के आँसू थे।

रात्रि का तीसरा पहर बीत चुका था। चौथा पहर आरंभ होते ही बाबा भारती ने अपनी कुटिया से बाहर निकल ठंडे जल से स्नान किया। उसके पश्चात, इस प्रकार जैसे कोई स्वप्न में चल रहा हो, उनके पाँव अस्तबल की ओर बढ़े। परंतु फाटक पर पहुँचकर उनको अपनी भूल प्रतीत हुई। साथ ही घोर निराशा ने पाँवों को मन-मन भर का भारी बना दिया। वे वहीं रुक गये।

घोड़े ने अपने स्वामी के पाँवों की चाप को पहचान लिया और जोर से हिनहिनाया।

अब बाबा भारती आश्चर्य और प्रसन्नता से दौड़ते हुए अंदर घुसे और अपने प्यारे घोड़े के गले से लिपटकर इस प्रकार रोने लगे मानो कोई पिता बहुत दिन से बिछुड़े हुए पुत्र से मिल रहा हो। बार-बार उसकी पीठ पर हाथ फेरते, बार-बार उसके मुँह पर थपकियाँ देते।

फिर वे संतोष से बोले, "अब कोई दीन-दुखियों की सहायता से मुँह न मोड़ेगा।"

थोड़ी देर बाद जब अस्तबल से बाहर निकले तो उनकी आँखों से आँसू बह रहे थे। ये आँसू उसी भूमि पर ठीक उसी जगह गिर रहे थे जहाँ बाहर निकलने के बाद खड्गसिंह खड़ा होकर रोया था।

दोनों के आँसुओं का उसी भूमि की मिट्टी पर परस्पर मिलाप हो गया।

परीक्षा

प्रेमचंद

भारतीय परंपरा में दया, करुणा और प्रेम जीवन के महत्वपूर्ण मूल्य और मनुष्यता की पहचान माने जाते हैं। 'परीक्षा' कहानी में दीवान सुजानसिंह अपने जिस उत्तराधिकारी जानकीनाथ को चुनते हैं, वह इन्हीं मूल्यों का प्रतीक है।

गाँधीजी ने जीवन-भर अपने विचारों तथा कर्मों में दया, ममता, पर-दुख और कातरता को सदैव महत्व दिया है। दुखी जनों की सेवा उनके जीवन-दर्शन का महान लक्ष्य रहा है। धैर्य, साहस, आत्मबल के द्वारा संकट में फँसे मनुष्य का सहयोग करना उनके जीवन-दर्शन का लक्ष्य था। 'परीक्षा' कहानी में दीवान सुजानसिंह इसीलिए जानकीनाथ को अपना उत्तराधिकारी चुनते हैं क्योंकि उसके हृदय में गरीबों-मज़लूमों के प्रति सहानुभूति और सहायता का भाव है तथा वह उनके सहयोग के लिए धैर्यपूर्वक कार्य कर सकता है। एक तरह से जानकीनाथ गाँधीजी के जीवन-मूल्यों का प्रतीक है।

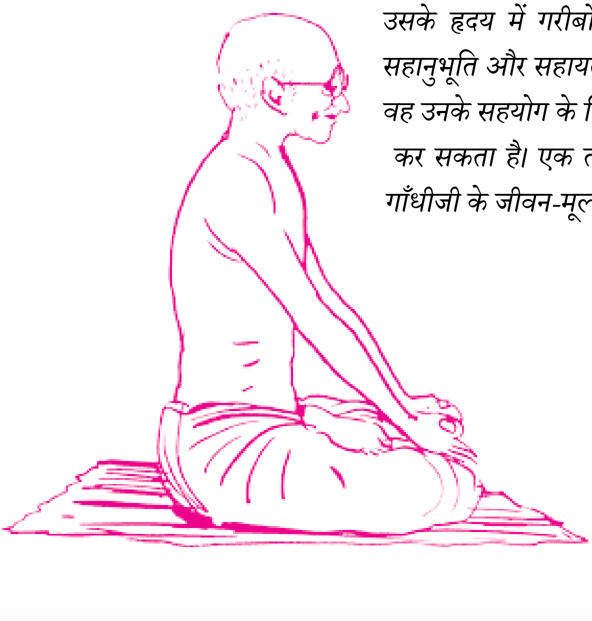

जब रियासत देवगढ़ के दीवान सरदार सुजानसिंह बूढ़े हुए तो परमात्मा की याद आयी। जाकर महाराज से विनय की, "दीनबंधु, दास ने श्रीमान की सेवा चालीस साल तक की, अब मेरी अवस्था भी ढल गयी, राजकाज सँभालने की शक्ति नहीं रही। कहीं भूल-चूक हो जाये तो बुढ़ापे में दाग लगे। सारी जिंदगी की नेकनामी मिट्टी में मिल जाये।"

राजा साहब अपने अनुभवशील नीतिकुशल दीवान का बड़ा आदर करते थे। बहुत समझाया, लेकिन जब दीवान साहब न माने तो हारकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, पर शर्त यह लगा दी कि रियासत के लिए नया दीवान आप ही को खोजना पड़ेगा।

दूसरे दिन देश के प्रसिद्ध पत्रों में यह विज्ञापन निकला कि देवगढ़ के लिए एक सुयोग्य दीवान की ज़रूरत है। जो सज्जन अपने को इस पद के योग्य समझें, वे वर्तमान दीवान सरदार सुजानसिंह की सेवा में उपस्थित हों। यह ज़रूरी नहीं है कि वे ग्रेजुएट हों, मगर हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है, मंदाग्नि के मरीज़ को यहाँ तक का कष्ट उठाने की कोई ज़रूरत नहीं। एक महीने तक उम्मीदवारों के रहन-सहन, आचार-विचार की देखभाल की जायेगी। विद्या का कम परंतु कर्तव्य का अधिक विचार किया जायेगा। जो महाशय इस परीक्षा में पूरे उतरेंगे, वे इस उच्च पद पर सुशोभित होंगे।

इस विज्ञापन ने सारे मुल्क में हलचल मचा दी। ऐसा ऊँचा पद और किसी प्रकार की कैद नहीं। केवल नसीब का खेल है। सैकड़ों आदमी अपना-अपना भाग्य परखने के लिए चल खड़े हुए। देवगढ़ में नये-नये और रंग-बिरंगे मनुष्य दिखायी देने लगे। प्रत्येक रेलगाड़ी से उम्मीदवारों का एक मेला-सा उतरता। कोई पंजाब से चला आता था, कोई मद्रास से। कोई नये फैशन का प्रेमी, कोई पुरानी सादगी पर मिटा हुआ। पंडितों और मौलवियों को भी अपने-अपने भाग्य की परीक्षा करने का अवसर मिला। बेचारे सनद के नाम रोया करते थे, यहाँ उसकी कोई ज़रूरत नहीं थी। रंगीन एमामे, चोगे और नाना प्रकार के अँगरखे और कनटोप देवगढ़ में अपनी सज-धज दिखाने लगे। लेकिन सबसे विशेष संख्या ग्रेजुएटों की थी, क्योंकि सनद की कैद न होने पर भी सनद से परदा तो ढका रहता था।

सरदार सुजानसिंह ने इन महानुभावों के आदर-सत्कार का बड़ा अच्छा प्रबंध कर दिया था। लोग अपने-अपने कमरों में बैठे हुए रोज़ेदार मुसलमानों की तरह महीने के दिन गिना करते थे। हर व्यक्ति अपने जीवन को अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छे रूप में दिखाने की कोशिश करता था। मिस्टर 'अ' नौ बजे दिन तक सोया करते थे, आजकल वे बगीचे में टहलते हुए उषा का दर्शन करते थे। मि. 'ब' को हुक्का पीने की लत थी, आजकल बहुत रात गये किवाड़ बंद करके अँधेरे में सिगार पीते थे। मि. 'द', 'स' और 'ज' से उनके घरों पर नौकरों की नाक में दम था, लेकिन ये सज्जन आजकल 'आप' और 'जनाब' के बगैर नौकरों से बातचीत नहीं करते थे। महाशय 'क' नास्तिक थे, हक्सले के उपासक, मगर आजकल उनकी धर्मनिष्ठा देखकर मंदिर के पुजारी को पदच्युत हो जाने की शंका लगी रहती थी। मि. 'ल' को किताबों से घृणा

थी, परंतु आजकल वे बड़े-बड़े ग्रंथ देखने-पढ़ने में डूबे रहते थे। जिससे बात कीजिये, वही नम्रता और सदाचार का देवता बना मालूम देता था। शर्मा जी घड़ी रात से ही वेदमंत्र पढ़ने लगते थे। मौलवी साहब को नमाज और तिलावत के सिवा और कोई काम न था। लोग समझते थे कि एक महीने का झंझट है, किसी तरह काट लें, कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।

लेकिन मनुष्यों का वह बूढ़ा जौहरी आड़ में बैठा हुआ देख रहा था कि इन बगुलों में हंस कहाँ छिपा है।

एक दिन नये फैशनवालों को सूझी कि आपस में हॉकी का खेल हो जाये। यह प्रस्ताव हॉकी के मँजे हुए खिलाड़ियों ने पेश किया। यह भी तो आखिर एक विद्या है। इसे क्यों छिपा रखें। संभव है, कुछ हाथों की सफ़ाई ही काम कर जाये। चलिये तय हो गया, फील्ड बन गया, खेल शुरू हो गया और गेंद किसी दफ़्तर के अप्रेंटिस की तरह ठोकरें खाने लगी।

रियासत देवगढ़ में यह खेल बिलकुल निराली बात थी। पढ़े-लिखे भलेमानुस लोग शतरंज और ताश जैसे गंभीर खेल खेलते थे। दौड़-कूद के खेल बच्चों के खेल समझे जाते थे।

खेल बड़े उत्साह से जारी था। धावे के लोग जब गेंद को लेकर तेजी से उड़ते तो ऐसा जान पड़ता था कि कोई लहर बढ़ती चली आती है। लेकिन दूसरी ओर के खिलाड़ी इस बढ़ती हुई लहर को इस तरह रोक लेते थे कि मानो लोहे की दीवार हो।

संध्या तक यही धूमधाम रही। लोग पसीने से तर हो गये। खून की गर्मी आँख और चेहरे से झलक रही थी। हाँफते-हाँफते बेदम हो गये, लेकिन हार-जीत का निर्णय न हो सका। अँधेरा हो गया था। इस मैदान से ज़रा दूर हटकर एक नाला था। उस पर कोई पुल न था, पथिकों को नाले में से चलकर आना पड़ता था। खेल अभी बंद ही हुआ था और खिलाड़ी लोग दम ले रहे थे कि एक किसान अनाज से भरी हुई गाड़ी लिए हुए उस नाले में आया। लेकिन कुछ तो नाले में कीचड़ था और कुछ उसकी चढ़ाई इतनी ऊँची थी कि गाड़ी ऊपर न चढ़ सकती थी। वह कभी बैलों को ललकारता, कभी पहियों को हाथ से धकेलता, लेकिन बोझ अधिक था और बैल कमज़ोर। गाड़ी ऊपर न चढ़ती और चढ़ती भी तो कुछ दूर चढ़कर फिर खिसककर नीचे पहुँच जाती। किसान बार-बार ज़ोर लगाता और बार-बार झुँझलाकर बैलों को मारता, लेकिन गाड़ी उभरने का नाम न लेती। बेचारा इधर-उधर निराश होकर ताकता, मगर वहाँ कोई नज़र न आता। गाड़ी को अकेले छोड़कर कहीं जा भी न सकता था। बड़ी विपत्ति में फँसा हुआ था। इसी बीच खिलाड़ी हाथों में डंडे लिए घूमते-घामते उधर से निकले। किसान ने उनकी तरफ सहमी हुई आँखों से देखा, परंतु किसी से मदद माँगने का साहस न हुआ। खिलाड़ियों ने भी उसको देखा मगर बंद आँखों से, जिनमें सहानुभूति न थी। उनमें स्वार्थ था, मद था, मगर उदारता और भाईचारे का नाम भी न था।

लेकिन उसी समूह में एक ऐसा मनुष्य था, जिसके हृदय में दया थी और साहस था। आज हॉकी खेलते हुए उसके पैरों में चोट लग गयी थी। लँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे चला आता था। अकस्मात उसकी निगाह गाड़ी पर पड़ी। ठिठक गया। उसे किसान की सूरत देखते ही सब बातें ज्ञात हो गईं। डंडा एक किनारे रख दिया। कोट उतार डाला और किसान के पास जाकर बोला, "मैं तुम्हारी गाड़ी निकाल दूँ?"

किसान ने देखा एक गठे हुए बदन का लंबा आदमी सामने खड़ा है। झुककर बोला, "हुज़ूर, मैं आपसे कैसे कहूँ?"

युवक ने कहा, "मालूम होता है, तुम यहाँ बड़ी देर से फँसे हुए हो। अच्छा, तुम गाड़ी पर जाकर बैलों को साधो, मैं पहियों को धकेलता हूँ, अभी गाड़ी ऊपर चढ़ जायेगी।"

किसान गाड़ी पर जा बैठा। युवक ने पहियों को ज़ोर लगाकर उठाया। कीचड़ बहुत ज्यादा था। वह घुटने तक जमीन में गड़ गया, लेकिन हिम्मत न हारी। उसने फिर ज़ोर लगाया, उधर किसान ने बैलों को ललकारा। बैलों को सहारा मिला, हिम्मत बँध गई, उन्होंने कंधे झुकाकर एक बार ज़ोर लगाया तो गाड़ी नाले के ऊपर थी।

किसान युवक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बोला, "महाराज, आपने आज मुझे उबार लिया, नहीं तो सारी रात यहीं बैठना पड़ता।"

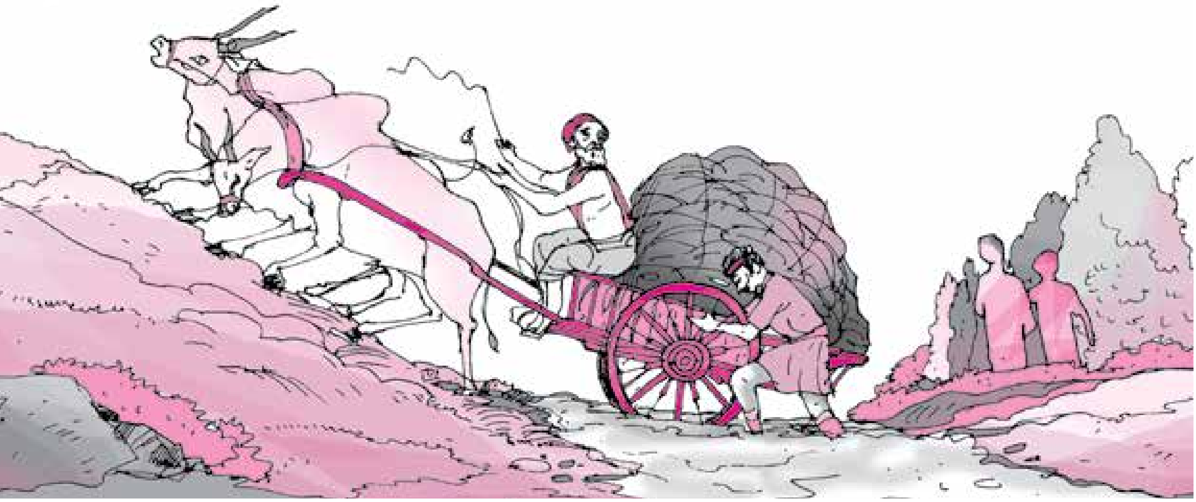

युवक ने हँसकर कहा, “अब मुझे कुछ इनाम देते हो?” किसान ने गंभीर भाव से कहा, “नारायण चाहेंगे तो दीवानी आपको ही मिलेगी।”

युवक ने किसान की तरफ गौर से देखा। उसके मन में एक संदेह हुआ, कहीं ये सुजानसिंह तो नहीं हैं? आवाज़ मिलती है, चेहरा-मोहरा भी वही लगता है। किसान ने भी उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। शायद उसके दिल के संदेह को भाँप गया। मुस्कराकर बोला, “गहरे पानी में पैठने से ही मोती मिलता है।”

महीना पूरा हुआ और चुनाव का दिन आ पहुँचा। उम्मीदवार लोग प्रातःकाल से अपनी-अपनी किस्मत का फैसला सुनने के लिए उत्सुक थे। दिन काटना पहाड़ हो गया। प्रत्येक के चेहरे पर आशा और निराशा के रंग आते-जाते थे। नहीं मालूम, आज किसके नसीब जागेंगे? न जाने किस पर लक्ष्मी की कृपादृष्टि होगी?

संध्या समय राजा साहब का दरबार सजाया गया। शहर के रईस और धनाढ्य, राजकर्मचारी और दरबारी तथा दीवानी के उम्मीदवारों का समूह, सब रंग-बिरंगी सज-धज बनाये दरबार में आ विराजे। उम्मीदवारों के कलेजे धड़क रहे थे।

तब सरदार सुजानसिंह ने खड़े होकर कहा, “मेरे दीवानी के उम्मीदवार महाशयों! मैंने आप लोगों को जो कष्ट दिया है, उसके लिए मुझे क्षमा कीजिये। इस पद के लिए ऐसे पुरुष की आवश्यकता थी जिसके हृदय में दया हो और साथ-साथ आत्मबल। हृदय वह जो उदार हो, आत्मबल वह जो विपत्ति का वीरता के साथ सामना करे और इस रियासत के सौभाग्य से हमें ऐसा पुरुष मिल गया। ऐसे गुणवाले संसार में कम हैं और जो हैं, वे कीर्ति और मान के शिखर पर बैठे हुए हैं, उन तक हमारी पहुँच नहीं। मैं रियासत को पंडित जानकीनाथ-सा दीवान पाने पर बधाई देता हूँ।”

रियासत के कर्मचारियों और रईसों ने जानकीनाथ की तरफ देखा। उम्मीदवार दल की आँखें उधर उठीं, मगर उन आँखों में सत्कार था, इन आँखों में ईर्ष्या।

सरदार साहब ने फिर फरमाया, "आप लोगों को यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति न होगी कि जो पुरुष स्वयं जख्मी होकर एक गरीब किसान की भरी हुई गाड़ी को दलदल से निकालकर नाले के ऊपर चढ़ा दे, उसके हृदय में साहस, आत्मबल और उदारता का वास है। ऐसा आदमी गरीबों को कभी न सतायेगा। उसका संकल्प दृढ़ है, जो उसके चित्त को स्थिर रखेगा। वह चाहे धोखा खा जाये, परंतु दया और धर्म से कभी न हटेगा।"

पोली इमारत

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

अपार धन-वैभव तथा भोग विलास से सुख तथा प्रसन्नता नहीं मिल सकती है। सच्चे सुख के लिए प्रेम और विश्वास से भरे सादगीपूर्ण जीवन की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि गाँधीजी हमेशा सादगी, त्याग, स्वावलंबन, स्वच्छता पर ज़ोर देते रहे हैं।

'पोली इमारत' कहानी में जीवन के दो रूपों को 'उग्र' जी ने चित्रित किया है। एक तरफ घोर भोग-विलास, वैभव से भरा प्रेमविहीन जीवन तो दूसरी तरफ श्रम, स्वावलंबन, सादगी और स्वच्छता से भरा प्रेमपूर्ण जीवन। निश्चय ही प्रेम, श्रम, स्वावलंबन और सादगी से भरा जीवन श्रेष्ठ होता है। कहानी इस रूप में गाँधीजी के विचारों को अपने में आत्मसात किये है।

आप सोचते होंगे कि इमारत में स्वर्ग रहता है, अमीरी में बड़े सुख हैं। आप ही की तरह उस 'सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्तुः' वाले निरीक्षक ने भी सोचा होगा। पर मेरा अनुभव इसके बिलकुल विपरीत है और जहाँ तक मैंने देखा, मेरी ही कसौटी पर ज्यादातर अमीर या श्रीमंत या बड़े आदमी सही उतरते हैं। याने सुख से धन का कोई विशेष संबंध नहीं। आप मेरा ही केस लें। मैं प्रसिद्ध करोड़पति। करोड़पति वह जो करोड़ों का धंधा करता हो, याने कई करोड़ का आसामी हो। 'नेमीराम प्रेमीराम' फर्म का नाम आपने ज़रूर सुना होगा। मैं उसी का वर्तमान स्वामी हूँ, पहले मेरे पिता थे श्री नेमीराम जी। मेरा नाम आप समझ ही गए होंगे— प्रेमीराम। और भी सही ढंग से मेरा नाम रायबहादुर, धर्मधुरंधर, दान-दिवाकर श्री प्रेमीराम जी है।

जब मेरे लिए मुट्ठी-भर कौड़ियाँ मोहाल थीं, तब मैं भी सोचता था कि सोने में ही सुख का सुगंध होगा, 'सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्तुः' वाले पंडित की तरह। और मुझे अब लगता है कि उक्त सूत्र का वक्ता ज़रूर ही दरिद्र रहा होगा। दरिद्र ही, धन-अनुभवहीन ही ऐसा सोच-समझ और ललकारकर कह सकता है।

इस वक्त मेरे पास तीन तो कॉटन मिलें है, तेरह फैक्टरियाँ और पचासों दूसरे धंधे। केवल एक नगर में ही नहीं, हिंदुस्तान के सभी बड़े-बड़े शहरों में। करोड़ों रुपये बरसाती पानी की तरह मेरे हाथ पर से बहते हुए विविध बाज़ारों में जाते हैं। मैं जो चीज़ चाहूँ, चाहते ही वही मुट्ठी में आ जाती है, फिर भी मुझे सुख नहीं।

धन से प्राप्य सुख— सुरा-सुंदरी-भोग आदि— धन हाथ में आते ही मैंने भर-भर पेट लूटे। कल तक विलासियों की लिस्ट में मेरा नाम सबके ऊपर था। सो, आज तक किसी को विश्वास नहीं होता कि मैं कभी विलास-विरहित हो सकता हूँ। दस साल जमकर जो भोग किए, तो सारा तन पोपला पड़ गया, जिससे राज-रोग अपने दल-बल के साथ मेरे शरीर में आ विराजे। 'शरीर व्याधि मन्दिरम्' देखना हो, तो आप कभी आकर मुझे देख जायें। आपके आतिथ्य और भोजनादि की व्यवस्था मेरे माथे।

मेरे पास करोड़ों रुपये, जिनसे मैं जो चाहूँ पा सकता हूँ। पर जो चाहूँ, उसे पचा नहीं सकता। पिऊँ तो पेशाब से खून जाने लगता है, खाऊँ तो दो ग्रास हज़म नहीं हो सकते, फिर स्त्री-सुख की तो चर्चा ही अलग है। गम के बाद खाने को मिलता है परवल या लौकी का जूस और दो फुलके। बस! ज़रा-सा घी खा लूँ, तो दस्त आने लगें। दूध पी लूँ, तो कालरा हो जाये। घर में सबकी खुराक अच्छी, मेरी पत्नी की तो डबल। मगर मेरी किस्मत में वे ही दो फुलके, हल्के। और मैं करोड़ों का वारा-न्यारा करने वाला!

अब तो जीवन के शेष दिन डाक्टरों के सिवा अन्य किसी के साथ कटते नज़र नहीं आते। तिज़ोरी में करोड़ रुपये हों, पर जान डॉक्टर की मुट्ठी में है। मारे इंजेक्शनों के भुजाएँ छलनी बन

गईं और अब नितम्बों में सूजे चलाए जा रहे हैं। मैं बड़े दुख में हूँ और मेरी ही कमाई या भाग्य पर रहने वाले लोग अमन-चैन में हैं।

जवानी में पर-स्त्री लंपट होने से घरवाली पर भी मेरा कोई रौब नहीं। वह भी अमीर घर की लड़की अड़ीली। मैंने उसकी परवाह छोड़ी, तो उसने मेरी परवाह छोड़ दी। जिस डॉक्टर से मैं मौत से बचने की दवाएँ लेता, उसी से वह भूख बढ़ाने की दवाएँ लेती। देवीजी स्वस्थ जैसे हरियाना नस्ल की गाय। मैं अस्वस्थ जैसे गर्मी के दिनों में सूखे-पहाड़ी इलाके का डांगर बैल।

कमज़ोर बैल पर मुमकिन है कि किसी गौ-माता को तरस आ जाये, पर क्या मजाल कि मेरी हालत पर मेरी अमीर-पुत्री पत्नी को तरस आये।

सारा वातावरण स्वार्थमय और सही सहानुभूति-शून्य। मैं शांति चाहूँ और मेरी पत्नी रेडियो पर चुन-चुनकर वे ही प्रोग्राम सुननेवाली जिनमें हो-हल्ला और शोर-शराबा हो। मैं कहूँ कि मैं बीमार हूँ, तो उसका सवाल या जवाब हाज़िर कि क्या आप चाहते हैं कि मनहूस बनी रहकर मैं भी बीमार पड़ जाऊँ?

मैं छह बजे उठूँ, देवीजी नौ बजे और उनके उठने के पहले झाड़ू, चाय, नाश्ता कुछ भी संभव नहीं। डॉक्टरों ने मुझे साढ़े दस बजे तक दिन और आठ बजे रात तक खाने या ब्यालू करने की हिदायत की है, पर देवीजी साढ़े ग्यारह बजे नहाती हैं। वह नहाकर जब ठाकुरजी को भोग लगा लें, तब मुझे दो हल्के फुलके नसीब हों।

पहले सुख बुलाने के लिए ऐय्याशी की, फिर दुख भुलाने के लिए और अब किसी बहाने कोई भी शारीरिक सुख भोगने के मैं नाकाबिल हो गया हूँ। एक शायर ने अपनी कमज़ोरी में गाया— "गो हाथ को जुम्बिश नहीं, आँखों में तो दम है"— पर मेरे जाने, उसकी आँखों में नहीं, दिल में दम रहा होगा। यहाँ दिल ही बेदम हो गया है। और इस उम्र में, जबकि मैं अभी महज पैंतीस साल तीन महीने का हूँ। और इस उम्र में जबकि असाधारण संपत्ति-श्री मेरे चरणों पर लोटती है।

यहाँ की संपत्ति में सुख नहीं है। सुख कहाँ है, मेरी समझ में ही नहीं आता। महलनुमाँ मकान जेलखाना मालूम पड़ता है, डॉक्टर जेलर जान पड़ते हैं। ऐय्याशी के मुँह सौ बार देखे तो डॉक्टरों के प्रिय जल्लादी चेहरे हज़ार बार देखने को मिल रहे हैं। और जब अपनी पत्नी ही इज़्ज़त और प्यार न कर अपमान और तिरस्कार करती है, तब दूसरे से कोई क्या उम्मीद करे। प्रेमी सभी बनते हैं, पर मैं जानता हूँ, मात्र मुखौटे लगाने वाले। जिसके अंदर झाँकिये, वही मतलब, स्वार्थ, खुदगर्ज़ी, माया मात्र।

उस दिन की बात। चार ही बजे रात नींद खुल गई। सवेरे कोई बड़ा त्योहार था। मैं बिलकुल चंगा नहीं था। अभी वैद्यराज जी की दवाएँ चल ही रही थीं। फिर भी हालत काफी प्रसन्न थी। खासकर उस वक्त। मुमकिन है प्रभात के साथ उदय होने वाले त्योहार की कल्पना-मात्र से वह प्रसन्नता पुष्ट हो उठी हो, पर उस समय मैं बहुत प्रसन्न था।

सोचा जल्द ही कोई 'कॉफी' एक प्याली पिला देता तो सूर्योदय के पहले ही ज़रा घूमने को निकल जाता। मैंने नौकर को बुलाने के लिए पलंग में 'फिटित' बिजली की घंटी बजायी। वह आया। पर ज़रा देर में आया। क्यों?

कई बार पूछने पर उसने बतलाया कि घंटी की आवाज़ सुनते ही देवीजी की नींद भंग हो गई और बहुत ही नाराज होकर वह गालियाँ देने लगीं। उन्होंने कहा, "कौन मौत-पड़ा सवेरे-सवेरे मसान जा रहा है?"

और त्योहारोदय के पहले ही पूँजीपति अभागे का दुर्भाग्योदय हो गया। या कोई इसे दूसरे नाम से भी पुकार सकता है।

अब किस तबीयत से कोई नौकर से 'कॉफी' चाहता। कॉफी— इससे ज्यादा और क्या? फिर, मेरे कहने पर भी मालकिन के डर से नौकर 'कॉफी' न बनाता। मैं परिस्थिति से पीड़ित मन-ही-मन जल-भुनकर रह गया, अपने सौभाग्यमुखी दुर्भाग्य पर!

हम चमचम वातावरण में मरते भी हों, तो लोग समझते हैं, 'रस ले रहे हैं', धातु-पुष्टक। भाँड के पेट में 'कालिक पेन'— भयानक दर्द— लोग समझते नकल कर रहा है। भाँड की ही तरह अमीरी का नक्काल चंचला-पति भी सहानुभूति-विहीन प्राणी होता है। और मैं भी ऐसे ही मरूँगा। और 'सब ठाठ धरा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा!'

बे-चाह के घर से चोर की तरह दबे पाँव मैं बाहर निकला। सोचा 'कॉफी' नहीं मिली, तो प्रात:कालीन वायु ही सही। वायु से तो श्रीमतीजी की नींद नहीं टूटेगी! वायु-सेवन के लिए

तो नौकरों की मदद की ज़रूरत नहीं? आग लगे इमारत में। भाड़ में जाये मतलबी परिवार! सत्यानाश हो संपत्ति का—

"वह संपति केहि काम की, जनि काहू पै होइ।
नित्य कमावे कष्ट करि, विलसे औरहि कोई।।"

मालूम नहीं मुझ जैसे संपत्ति के 'मर्मी' के सामने अनुभव के बाद विधाता कमलासन वरदान देने आयें, तो फिर संपत्ति मैं माँगू या नहीं? कम-से-कम मैं तो ऐसी संपत्ति हरगिज़ माँगने वाला नहीं। इस विशाल, नीरस, रेगिस्तानी, स्वार्थ-मलीन संपत्ति से तो कहीं अच्छा केवल पेट-भर भोजन, तन-भर कपड़े और मन-भर नींद। पर क्या कपड़े ही से काम चल जायेगा? मैं बंगले के बाहर, बाग के बाहर, फाटक के बाहर निकलते-निकलते सोचने लगा कि क्या केवल पेट-भर भोजन और तन-भर वस्त्रों से काम चल जायेगा? सृष्टा, विधाता अगर सामने आ जायें, तो स्वास्थ्य के साथ इतना ही माँगकर शेष जो मेरे पास है, उसे छोड़ सकूँगा? शेष छोड़ देने पर फिर बच ही क्या जायेगा? ना, ना! केवल स्वास्थ्य, भोजन और वस्त्र पर इतनी बड़ी संपत्ति छोड़ना, मुट्ठी-भर बालू पर रत्नाकर बेचना है।

पर ये कौन? मेरी नज़र उन दो सफरी झोंपड़ों पर गई जो मेरे अहाते की दीवार में लोहे के टुकड़ों के सहारे शायद आज-कल मैं ही तैयार किये गए थे। हाँ, याद आया। कल ही शाम को नौकर पूछ रहा था कि कोई ज़रायमपेशा परिवार बाहर झोंपड़े बना दो-चार दिन रहना चाहता है और मना करने पर भी जा नहीं रहा है। फिर मुझे याद आया कि मैंने नौकर को अच्छी तरह से समझा दिया था कि उन्हें किसी भी शर्त पर ठहरने न दिया जाये, क्योंकि इन ज़रायमपेशा वालों का कोई ठिकाना नहीं। पहले एक झोंपड़ी लगाता है, फिर दूसरा और फिर देखिए तो पूरा खेड़ा तैयार बखेड़ों-भरा! एक को हटाया या भगाया भी जा सकता है, पर जहाँ इनकी सेना इकट्ठी हुई, वहाँ सिवा फजीते के जीत का नाम भी नहीं। नौकर कमबख्त ने इन दरिद्रों, लुटेरों, रोग के घरों को मना करने पर भी आखिर ठहराया क्यों? ज़रूर कुछ-न-कुछ रिश्वत ले ली होगी। मेरे मन में आया कि उसी वक्त नौकर को बुलाकर अपने सामने उन झोंपड़ों को उजड़वा, घुमक्कड़ ज़रायमपेशों को पुलिस की हिरासत में डलवा दूँ। मैं भी किसका मुँह देखकर आज उठा। शायद उठते ही मेरी नज़र आइने पर पड़ी थी। चाय नहीं, कॉफी नहीं, घर में चैन नहीं और बाहर ज़रा मरने (घूमने) को निकला तो यह जलसा। अच्छा रे! दिखाता हूँ आज कि मैं भी क्या हूँ। पत्नी से डर जाता हूँ तो सभी से डरूँगा? कोई इस धोखे में न रहे। नौकर क्यों? मैं खुद भी इतना कमज़ोर नहीं कि दो चिथड़ीले झोंपड़े न उजाड़ सकूँ। तो मैं अपने हाथ से झोंपड़े उजाड़ूँगा। ज़रा हवा खाकर लौटने तो दो मुझे।

और कौन हवा खाता है तब जबकि मन किसी के झोंपड़े उजाड़ने में लगा हो। कमज़ोर क्रोध से सनक अपने बंगले ही की परिक्रमा कर मैं पुनः उन्हीं झोंपड़ों के पास आ गया।

बिना जाने, बिना चेष्टा किए कहिए, लेकिन इस बार मैं प्रायः पीछे की तरफ था। ऐसी जगह जहाँ से झोंपड़ों की सारी लीला स्वयं को प्रकट किए बिना ही नज़र आती थी। मैंने देखा वह बदमाश परिवार पूरे पाँच प्राणियों का था। बूढ़ी माँ, नौजवान लड़का, तरुणी बहू और दो छोटे-छोटे लड़के।

मैंने देखा, चीथड़े-चटाई से घेरकर घर के रूप में सजाया गया वह स्थान झाड़-बुहार और लीपकर अच्छी तरह साफ़ किया गया था। एक कोने में दो-तीन ईंटों से बने चूल्हे पर टीन के बड़े डिब्बे में पानी उबलकर उसाँसें ले रहा था। तरूणा बड़े लड़के को साफ़ करने के बाद टूटी बाल्टी के पानी से छोटे लड़के को स्वच्छ करने में लगी थी और बूढ़ी एक कोने में पड़ी गंदी गठरियों में कुछ ढूँढ़ रही थी।

"तुम क्यों तकलीफ करो हो, अम्मा?" तरुणी बोली, "तुरत रामा को साफ कर मैं चाय तैयार किये देती हूँ न!"

"खबरदार, सूअर!" फटे कंबल में से मुँह बाहर कर नौजवान घुमक्कड़ बोला, "मेरी अम्मा से कोई काम कराया तो बोटी-बोटी अलग कर दूँगा।"

मैंने देखा परिवार का तरुण पालक वह घुमक्कड़ घनघोर काले रंग का गठीला और मज़बूत। उसने क्रोध नहीं, प्रेममय विनोद से पत्नी को डाँटते हुए अपनी अम्मा का सम्मान किया था। उसकी भाषा में यह उसके प्रातः प्रणाम की तरह था।

"जिस दिन यह सूअर न रहेगा" तरुणी ने रामा को पोंछते हुए कहा, "उस दिन सूरज निकलने के पहले लीप-पोतकर तेरा घर दर्पन की तरह साफ़ न होगा। बच्चे गधा-लोट लोटते

नज़र आएँगे। यह जो चर्बी आज है तेरी आँखों में, सूअर न रहेगी, तो न रह जायेगी। चल उठ! चाय तैयार ही है।"

तरुणी ने बच्चे को छोड़ पोटलियों से कागज़ की पुड़िया बाहर की, फिर दूसरी पोटली से गुड़ के दो बड़े-बड़े टुकड़े। देखते-ही-देखते मिट्टी के प्यालों में 'स्टीम उबलती चाय' परिवार के प्रत्येक प्राणी के होंठों के निकट! गुड़ की चाय की तेजी से रामा उछलने लगा, माँ सावधान न होती तो उसने अपनी चाय गिरा दी होती। उसका बड़ा भाई कल्लू त्रिभंगी मूर्ति बना अँगुलियों की मुरली बजा नाचने लगा। और सूरज की पहली किरणें चिथड़ीले झोंपड़ों पर सुनहले पुआल की तरह बरस पड़ीं। दोनों झोंपड़े ज्योतिर्मय! वातावरण प्रफुल्लतापूर्ण!

इतना प्रकाश, इतनी प्रसन्नता, ऐसी स्वच्छता, ऐसा स्नेह-प्रवाह मुझ करोड़पति के घर या महा-महल में नहीं! मुझे नहीं मालूम था कि खानाबदोशों में भी ऐसी स्निग्ध पारिवारिकता होती है, ऐसा प्रसन्न स्वास्थ्य होता है। ज़रायमपेशा नाम से कुख्यात ये लोग इतने सरस भी होते हैं, मुझे मालूम नहीं था। मुझे अपने पहले निर्णय और आक्रोश पर बड़ा पश्चाताप होने लगा। आह! उन आवारों का यह प्रसन्न जीवन पाने के लिए ऐसी कौन रकम है, जो मैं दे नहीं सकता। मेरे मन में आया चुल्लू-भर गुड़ की चाय उनके उन्हीं कुपात्रों में मैं भी पीऊँ, दरिद्रता में प्रसन्न उस अपन्नपूर्णा गृहस्थी से भीख माँगकर। और भावावेश में मै उनके सामने उपस्थित हो गया।

घुमक्कड़ परिवार के कलूटे तरुण स्वामी ने जैसे मुझे पहचाना। थर्राकर वह खड़ा हो गया, साथ ही सारा परिवार दोनों टाँगों पर। तरुणी ने गंदी साड़ी का घूँघट सावधानी से मुँह पर खींच लिया। सचमुच सब-के-सब काँपने लगे— स्वस्थ छोकरों को छोड़कर। निर्भय आश्चर्य से गुरेरते हुए वे दाहिने-बाएँ खड़े हो गए।

"राजा!" पहले बूढी बोली, "पाँचों अँगुलियाँ बराबर नहीं होतीं। हम बुरे नहीं हैं। कहीं और जगह न मिलने और पुलिस वालों की बदमाशी से बचने के लिए रात यहीं ठहर गए हैं। अब रहने दें तो दो-चार दिन ठहरकर शहर में माँग खाएँगे, नहीं तो अभी कील-काँटा उखाड़ अपने रास्ते लगते हैं।"

"कौन छाती पर लादकर ले जायेगा यह महल-बखरी, बूढ़ी माँ?"— मैंने स्निग्ध शब्दों में कहा, "मैं तो तुम लोगों की सफ़ाई और घरेलू मुहब्बत से बड़ा ही खुश हूँ। जितने दिन तुम्हारा जी चाहे, यहाँ रहो। पुलिस तुम्हें छेड़ेगी नहीं, जिम्मा मेरा। और कुछ?"

गौरी

सुभद्रा कुमारी चौहान

गाँधीजी के विचारों तथा जन-आंदोलनों ने पूरे देश को जागृत कर दिया था। देश में पहली बार स्त्रियों की सामाजिक राजनीतिक जीवन में बड़े पैमाने पर भागीदारी हुई। उनके त्याग, देशप्रेम तथा संघर्ष की चेतना के पीछे गाँधीजी की वैचारिक शक्ति मौजूद थी। स्त्रियों में देश के प्रति लगाव और सम्मान के इस भाव को 'गौरी' कहानी में प्रस्तुत किया गया है। कथानायिका 'गौरी' अपने जीवनसाथी के रूप में जेल में बंद स्वतंत्रता सेनानी को चुनती है और देश की आज़ादी के संघर्ष में अपना योगदान सुनिश्चित करती है। वह सुखमय जीवन की जगह देश के लिए त्यागमय और कठिन जीवन का रास्ता अख्तियार करती है।

शाम को, गोधूलि की बेला, कुली के सिर पर सामान रखवाये, जब बाबू राधाकृष्ण अपने घर आये, तब उनके भारी-भारी पैरों की चाल और चेहरे के भाव से ही कुंती ने जान लिया कि काम वहाँ भी नहीं बना। कुली के सिर पर से बिस्तर उतरवाकर, बाबू राधाकृष्ण ने उसे कुछ पैसे दिये। कुली सलाम करके चला गया और वे पास ही पड़ी एक आरामकुर्सी पर, जिसके स्प्रिंग खुलकर कुछ ढीले होने के कारण इधर-उधर फैल गये थे, गिर-से पड़े। उनके इस प्रकार बैठने से कुछ स्प्रिंग आपस में टकराये, जिससे एक प्रकार की झन-झन की आवाज़ हुई। पास ही बैठे कुत्ते ने कान उठाकर इधर-उधर देखा, फिर भों-भों करके भूँक उठा। इसी समय उनकी पत्नी कुंती ने कमरे में प्रवेश किया। काम की सफलता या असफलता के बारे में कुछ भी न पूछकर कुंती ने नम्र स्वर में कहा– चलो हाथ-मुँह धो लो, चाय तैयार है।

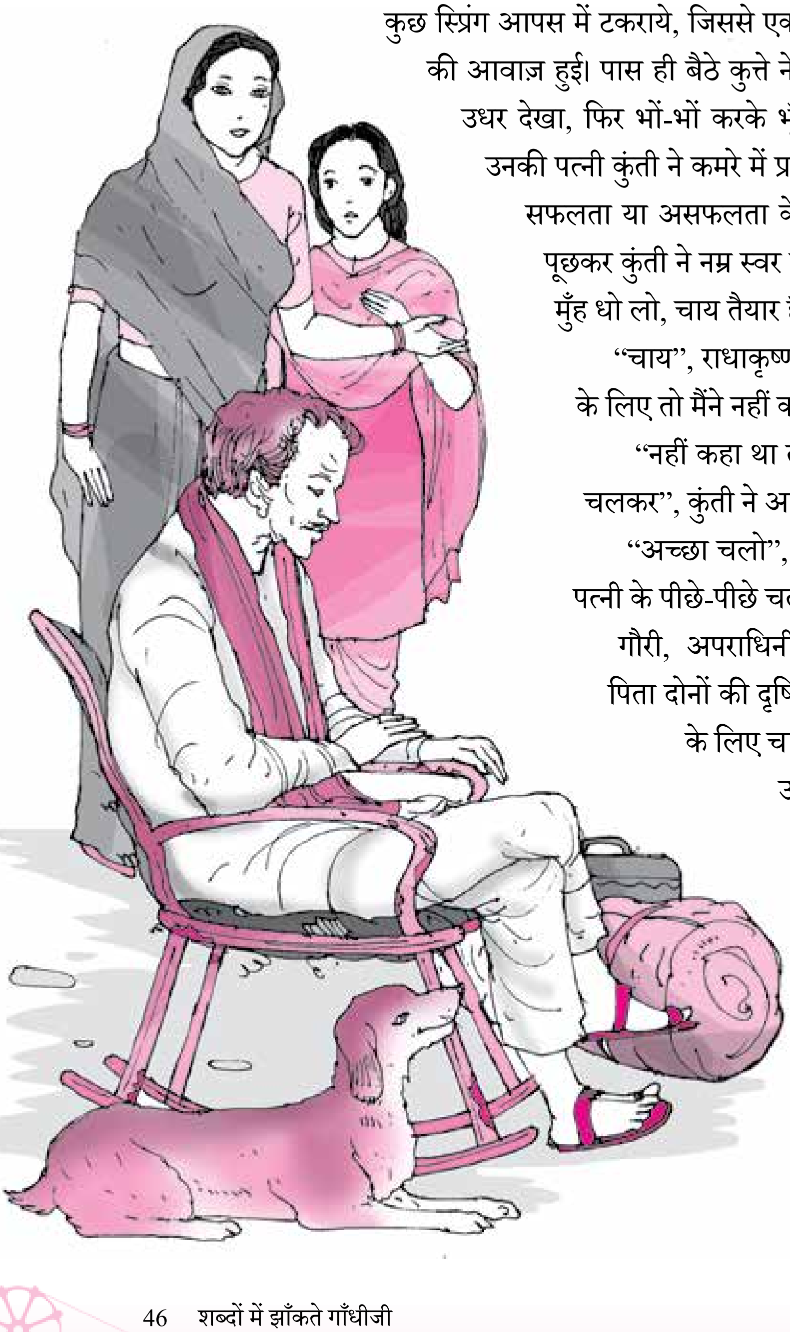

"चाय", राधाकृष्ण चौंक से पड़े– चाय के लिए तो मैंने नहीं कहा था।

"नहीं कहा था तो क्या हुआ, पी लो चलकर", कुंती ने आग्रहपूर्वक कहा।

"अच्छा चलो", कहते हुए राधाकृष्ण पत्नी के पीछे-पीछे चले गये।

गौरी, अपराधिनी की भाँति, माता-पिता दोनों की दृष्टि से बचती हुई पिता के लिए चाय तैयार कर रही थी। उसे ऐसा लग रहा था कि पिता की सारी कठिनाइयों की जड़ वही है। न वह होती और न पिता को उसके विवाह की चिंता में, इस प्रकार स्थान-स्थान घूमना

पड़ता। वह मुँह खोलकर किस प्रकार कह दे कि उसके विवाह के लिए इतनी अधिक परेशानी उठाने की आवश्यकता नहीं। माता-पिता चाहे जिसके साथ उसकी शादी कर दें, वह सुखी रहेगी। न करें तो भी वह सुखी है। जब विवाह के लिए उसे ज़रा भी चिंता नहीं, तब माता-पिता इतने परेशान क्यों रहते हैं– गौरी यही न समझ पाती थी। कभी-कभी वह सोचती– क्या मैं माता-पिता को इतनी भारी हो गयी हूँ? रात-दिन सिवा विवाह के उन्हें और कुछ सूझता नहीं। तब आत्मग्लानि और क्षोभ से गौरी का रोम-रोम व्यथित हो उठता। उसे ऐसा लगता कि धरती फटे और वह समा जाये, किंतु ऐसा कभी न हुआ।

गौरी— वह गौरी जो पूनो के चाँद की तरह बढ़ना भर जानती थी, घटने का जिसके पास कोई साधन न था— बाबू राधाकृष्ण के लिए चिंता की सामग्री हो गयी थी। गौरी उनकी एकमात्र संतान थी। उसका विवाह वे योग्य वर के साथ करना चाहते थे– यही सबसे बड़ी कठिनाई थी। योग्य पात्र का मूल्य चुकाने लायक उनके पास यथेष्ट संपत्ति न थी। यही कारण था कि गौरी का यह उन्नीसवाँ साल चल रहा था, फिर भी वे कन्या के हाथ पीले न कर सके थे। गौरी ही उनकी अकेली संतान थी। छुटपन से ही उसका बड़ा लाड़-प्यार हुआ था। प्राय: उसके उचित-अनुचित सभी हठ पूरे हुआ करते थे। इसी कारण गौरी का स्वभाव निर्भीक, दृढ़-निश्चयी और हठीला था। वह एक बार जिस बात को सोच-समझकर कह दे, फिर उस बात से कोई उसे हटा न सकता था। पिता की परेशानियों को देखते हुए अनेक बार उसके जी में आया कि वह पिता से साफ़-साफ़ पूछे कि आखिर वे उसके विवाह के लिए इतने चिंतित क्यों है। वह स्वयं तो विवाह को इतना आवश्यक नहीं समझती। और अगर पिता विवाह को इतना अधिक महत्व देते हैं, तो फिर पात्र और कुपात्र क्या? विवाह करना है, कर दें, किसी के भी साथ वह हर हालत में सुखी और संतुष्ट रहेगी। उनकी यह परेशानी, इतनी चिंता अब उससे सही नहीं जाती। किंतु संकोच और लज्जा उसकी जबान पर ताला-सा डाल देते। हज़ार बार निश्चय करके भी वह पिता से यह बात न कह सकी।

पिता को आते देख, गौरी चुपके से दूसरे कमरे में चली गयी। राधाकृष्ण बाबू ने जैसे बेमन से हाथ-मुँह धोया और पास ही रखी हुई एक कुरसी पर बैठ गये। वहीं एक मेज पर कुंती ने चाय और कुछ नमकीन पूरियाँ पति के सामने रख दीं। पूरियों की तरफ राधाकृष्ण ने देखा भी नहीं। चाय का प्याला उठाकर पीने लगे।

ऐसी कन्या को जन्म देकर, जिसके लिए वर ही न मिलता हो, कुंती स्वयं ही जैसी अपराधिनी हो रही थी। कुंती ने डरते-डरते पूछा– जहाँ गये थे, क्या वहाँ भी कुछ ठीक नहीं हुआ?

ठीक! ठीक होने को वहाँ धरा ही क्या है, चाय का घूँट गले से नीचे उतारते हुए बाबू राधाकृष्ण ने कहा– सब हमीं लोगों पर है। विवाह करना चाहें तो सब ठीक है, न करना चाहें तो कुछ भी ठीक नहीं है।

कुंती ने उत्सुकता से पूछा– फिर क्या बात है? लड़के को देखा?

– हाँ देखा, अच्छी तरह देखा! हुँ:! कह राधाकृष्ण फिर चाय पीने लगे।

कुंती की समझ में यह पहेली न आयी, उसने कहा– ज़रा समझाकर कहो। तुम्हारी बात तो समझ में ही नहीं आती।

राधाकृष्ण– समझाकर कहता हूँ, सुनो। वह लड़का— लड़का नहीं आदमी— तुम्हारी गौरी के साथ मामूली चपरासी की तरह दिखेगा। बोलो करोगी ब्याह?

कुंती– विवाह की बात तो पीछे होगी। क्या रूप-रंग बहुत खराब है? फोटो में तो वैसा नहीं जान पड़ता।

राधाकृष्ण– रूप-रंग नहीं, रहन-सहन बहुत खराब है। इतनी सिधाई भी तो अच्छी नहीं होती कि जिसके पीछे आदमी आदमी न दिखे। और फिर उमर भी तो अधिक है, पैंतीस-छत्तीस साल। साथ ही दो बच्चे भी हैं। उन्हीं बच्चों को सम्हालने के लिए तो वे विवाह करना चाहते हैं, नहीं तो शायद न करते। उनकी दूसरी शादी है। उनकी उमंगें, उनका उत्साह सब ठंडा पड़ गया है। वे अपने बच्चों के लिए एक धाय चाहते हैं, पर मेरी लड़की की तो दूसरी शादी नहीं है। और फिर वह तो साफ़-साफ़ कहते हैं कि मैं केवल बच्चों के लिए विवाह करना चाहता हूँ।

कुंती ने कहा– जिन्हें दूसरी शादी करनी होती है, वे सब बच्चों के ही बहाने तो शादी करते हैं, नहीं तो यह कहें कि अपने लिए करते हैं?

राधाकृष्ण– अरे नहीं-नहीं, वह आदमी कपटी नहीं है। उसके भीतर कुछ और बाहर कुछ हो ही नहीं सकता। हृदय तो उसका दर्पण की तरह साफ़ है। पर उसका खादी का कुरता, गाँधी टोपी, फटे-फटे चप्पल देखकर जी हिचकता है। वह कहीं नेता बनकर व्याख्यान देने लायक तो है, पर किसी के घर दूल्हा बनकर जाने लायक नहीं है। इसके अलावा तीस रुपये कुल उनकी तनखाह है, कांग्रेस दफ़्तर में सेक्रेटरी का काम करते हैं। तीन बार जेल जा चुके हैं। किस दिन चले जाते हैं, कुछ ठिकाना नहीं।

कुंती– आदमी तो बुरा नहीं जान पड़ता।

राधाकृष्ण– बुरा आदमी तो मैं भी नहीं कहता उसे, पर वह गौरी का पति होने लायक नहीं है। सच बात यह है।

कुंती– फिर तुमने क्या कह दिया?

राधाकृष्ण– क्या कह देता? उन्हें बुला आया हूँ। अगले इतवार को आवेंगे जिसमें तुम भी उन्हें देख लो। और वह आने के लिए भी तो बड़ी मुश्किल से तैयार हुए। कहने लगे– नहीं साहब। मैं लड़की देखने न आऊँगा। इस तरह लड़की देखकर मुझसे किसी लड़की का अपमान नहीं किया जाता। फिर जब मैंने उन्हें समझाकर कहा कि आप लड़की को देखेंगे, लड़की और उसकी माँ आपको देख लेंगी, तब कहीं बड़ी मुश्किल से राज़ी हुए।

गौरी दरवाज़े की आड़ में खड़ी सब बातें सुन रही थी। जिस व्यक्ति के प्रति उसके पिता इतने असंतुष्ट और उदासीन थे, उसके प्रति गौरी के हृदय में अनजाने ही कुछ श्रद्धा के भाव जाग्रत हो गये। राधाकृष्ण बाबू पान का बीड़ा उठाकर अपनी बैठक में चले गये। और उसी रात फिर उन्होंने अपने कुछ मित्रों और रिश्तेदारों को गौरी के लिए योग्य वर तलाशने को कई पत्र लिखे।

* * *

अगला इतवार आया। आज ही बाबू सीताराम जी, गौरी को देखने या अपने आपको दिखलाने आयेंगे। राधाकृष्ण जी ने यह पहले से ही कह रखा है कि किसी बाहरवाले को कुछ न मालूम पड़े कि कोई गौरी को देखने आया है। अतएव यह बात कुछ गुप्त रखी गयी है। घर के भीतरी आँगन में ही उनके बैठने का प्रबंध किया गया है। तीन-चार कुर्सियों के बीच में एक मेज है, जिस पर एक साफ़ धुला हुआ खादी का कपड़ा बिछा दिया गया है। और एक गिलास में आँगन के ही गुलाब के कुछ फूलों को तोड़कर, गुलदस्ते का स्वरूप दिया गया है। बहुत ही साधारण-सा आयोजन है। सीताराम जी सरीखे व्यक्ति के लिए किसी विशेष आडंबर की आवश्यकता भी तो न थी।

यथा समय बाबू सीताराम जी अपने दोनों बच्चों के साथ आये। बच्चे भी वही खादी के कुर्ते और हाफ पैंट पहने थे। न जूता न मोजा, न किसी प्रकार का ठाट-बाट। पर दोनों बड़े प्रसन्न, बड़े हँसमुख; आकर घर में वे इस प्रकार खेलने लगे, जैसे इस घर से वे चिर-परिचित हों। कुंती एक तरफ बैठी थी। बच्चों के कोलाहल से परिपूर्ण घर उसे क्षण-भर के लिए नंदनकानन-सा जान पड़ा। उसने मन ही मन सोचा– कितने अच्छे बच्चे हैं। यदि बिना किसी प्रकार का संबंध हुए भी सीताराम जी इन बच्चों के सम्हालने का भार उसे सौंप दें, तो वह खुशी-खुशी ले ले। वह बच्चों के खेल में इतनी तन्मय हो गयी कि क्षण-भर के लिए भूल बैठी कि सीताराम जी भी बैठे हैं, और उनसे भी कुछ बातचीत करनी है। इसी समय अचानक छोटे बच्चे को जैसे कुछ याद आ गया हो। दौड़कर पिता के पास आया। उनके पैरों के बीच में खड़ा होकर बोला– बाबू, तुम तो कैते थे न कि माँ दिकाने ले चलते हैं। माँ कआँ है, बतलाओ?

बाबू ने किंचित हँसकर कहा– ये माँ जी बैठी हैं, इनसे कहो, यही तुम्हें दिखायेंगी।

बालक ने मचलकर कहा– ऊँ हूँ, तुम दिकाओ। और इसी समय एक बड़ी-सी सफेद बिल्ली आँगन से होती हुई भीतर को भाग गयी। बच्चे बिल्ली के पीछे सब कुछ भूलकर, दौड़ते हुए अंदर पहुँच गये। गौरी पिछले बरामदे में चुपचाप खड़ी थी। वह न जाने किस ख्याल में थी। तब तक छोटे बच्चे ने उसका आँचल पकड़कर खींचते हुए पूछा– क्या तुम अमारी माँ हो?

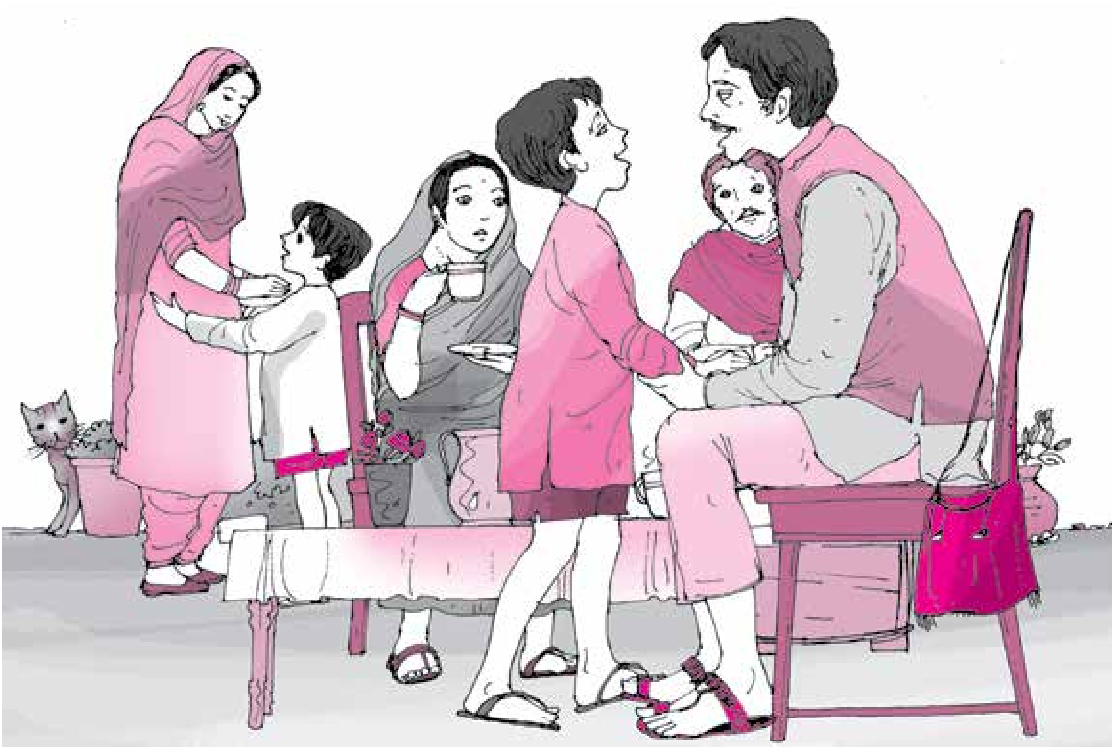

गौरी ने देखा, हृष्ट-पुष्ट सुंदर-सा बालक, कितना भोला, कितना निश्छल। उसने बालक को गोद में उठाकर कहा– हाँ।

बच्चे ने फिर उसी स्वर में पूछा– अमारे घर चलोगी न? बाबू तो तुम्हें लेने आये हैं औल हम भी आये हैं।

अब तो गौरी उसकी बातों का उत्तर न दे सकी। पूछा– मिठाई खाओगे?

"हाँ खाएँगे", दोनों ने एक ही साथ एक स्वर से उत्तर दिया।

कुछ क्षण बाद कुंती ने अंदर देखा कि छोटा बच्चा गौरी की गोद में और बड़ा उसी के पास बैठा मिठाई खा रहा है। एक नि:श्वास के साथ कुंती बाहर चली गयी और थोड़ी देर बाद ज्यों ही गौरी ने ऊपर आँख उठायी, उसने माता-पिता दोनों को सामने खड़ा पाया। पिता ने स्नेह के स्वर में पुत्री से कहा– बेटा ज़रा चलो, चलती हो न?

गौरी ने कोई उत्तर न दिया। उसने बच्चों का हाथ-मुँह धुलाया, उन्हें पानी पिलाया, फिर माँ के पीछे-पीछे बाहर चली गयी। बच्चे अब भी उसी को घेरे थे। वे उसे छोड़ना नहीं चाहते थे। बड़ी मुश्किल से सीताराम जी उन्हें बुलाकर कुछ देर तक अपने पास बिठा सके, किंतु ज़रा-सा मौका पाते ही वे फिर जाकर गौरी के आस-पास बैठ गये। पिता के विरुद्ध उन्हें कुछ नालिशें भी दायर करनी थीं, जो पिता के पास बैठकर न कर सकते थे।

छोटे ने कहा– बाबू हमें कबी खिलौने नहीं ले देते।

बड़े ने कहा– मिठाई भी तो कभी नहीं खिलाते।

छोटा बोला– औल अमें छोड़कर दफ़्तर जाते हैं, दिन-भर नईं आते, बाबू अच्छे नईं हैं।

बड़ा बोला– माँ तुम चलो, नहीं तो हम भी यहीं रहेंगे।

बच्चों की बातों से सभी को हँसी आ रही थी। कुंती ने बच्चों से कहा– तो तुम दोनों भाई यहीं रह जाओ, बाबू को जाने दो, है न ठीक?

काफी देर हो गयी, यह देखकर सीताराम जी ने कहा– समय बहुत हो चुका है, अब चलूँगा, नहीं तो शाम की ट्रेन न मिल सकेगी। फिर राधाकृष्ण की तरफ देखकर कहा– आप लोगों से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। लड़की तो आपकी साक्षात लक्ष्मी है। और यह मैं जानता था कि आपकी लड़की ऐसी ही होगी, इसीलिए देखने को आना नहीं चाहता था। फिर कुछ ठहरकर बोले– और सच बात तो यह है कि मुझे पत्नी की उतनी ज़रूरत नहीं, जितनी इन बच्चों को ज़रूरत है एक माँ की। मेरा क्या ठिकाना? आज बाहर हूँ तो कल जेल में। मेरे बाद इनकी देख-रेख करने वाला कोई नहीं रहता। यही सोच-समझकर विवाह करने को तैयार हो सका हूँ, अन्यथा इस उमर में विवाह? कहकर वे स्वयं हँस पड़े।

राधाकृष्ण ने मन-ही-मन सोचा– तो मेरी लड़की इनके बच्चों की धाय बनकर जायेगी। कुंती ने सोचा– कोई भी स्त्री ऐसे बच्चों का लालन-पालन कर अपना जीवन सार्थक बना सकती है। गौरी ने मन-ही-मन इस महापुरुष के चरणों में प्रणाम किया और बच्चों की ओर ममता-भरी दृष्टि से देखा। जैसे यह दृष्टि कह रही थी कि किसी विलासी युवक की पत्नी बनने से अधिक मैं इन भोले-भाले बच्चों की माँ बनना पसंद करूँगी। सीताराम जी को जाने के लिए प्रस्तुत देख, बच्चे फिर गौरी से लिपट गये। यदि राधाकृष्ण झूठ ही सही, एक बार भी कहते कि बच्चों को छोड़ जाओ तो सीताराम जी बच्चों को छोड़कर निश्चिंत होकर चले जाते। परंतु इस ओर से जब ऐसी कोई बात न हुई तो बच्चों को सिनेमा, सर्कस और मिठाई का प्रलोभन देकर बड़ी कठिनाई से गौरी से अलग करके वे ले जा सके। जाते समय सीताराम जी को पक्का विश्वास था कि विवाह होगा, केवल तारीख निश्चित करने भर की देर है।

* * *

सीताराम जी उस पत्र की प्रतीक्षा में थे जिसमें विवाह की निश्चित तारीख लिखकर आनेवाली थी। देश की परिस्थिति, गवर्नमेंट का रुख, और महात्मा जी के वक्तव्यों को पढ़कर, वे जानते थे कि निकट भविष्य में फिर सत्याग्रह-संग्राम छिड़नेवाला है। न जाने किस दिन उन्हें फिर जेल का मेहमान बनना पड़े। पिछली बार जब गये थे, तब उनकी बूढ़ी बुआ थीं, पर अब तो वे भी नहीं रहीं। यह कहारिन क्या बच्चों की देख-भाल कर सकेगी? बच्चों की उन्हें

बड़ी चिंता थी। और बच्चे भी सदा ही माँ-माँ की रट लगाये रहते थे। उन्होंने फिर एक पत्र बाबू राधाकृष्ण को शीघ्र ही तारीख निश्चित करने के लिए लिख भेजा। उधर राधाकृष्ण जी दूसरी ही बात तय कर रहे थे। उन्होंने सीताराम जी के पत्र के उत्तर में लिख भेजा कि गौरी की माँ पुराने ख्याल की हैं। वे बिना जन्मपत्री मिलवाये विवाह नहीं करना चाहतीं, अतएव आप अपनी जन्मपत्री भेज दें। पत्र पढ़ने के साथ ही सीताराम जी को यह समझने में देरी न लगी कि यह विवाह न करने का केवल बहाना मात्र है, किंतु फिर भी उन्होंने जन्मपत्री भेज दी। जन्मपत्री भेजने के कुछ ही दिन बाद उत्तर भी आ गया कि जन्मपत्री नहीं मिलती, इसलिए विवाह न हो सकेगा। क्षमा कीजियेगा।

बाबू राधाकृष्ण को गौरी के लिए दूसरा वर मिल गया था, जो उनकी समझ में गौरी के बहुत योग्य था। धनवान ये भी अधिक न थे, पर अभी-अभी नायब तहसीलदार के पद पर नियुक्त हुए थे, और आगे भी उन्नति की आशा थी। बी.ए. पास थे। देखने में अधिक सुंदर न थे। बदशक्ल भी कहे जा सकते थे, पर पुरुषों की भी कहीं सुंदरता देखी जाती है? उमर कुछ अधिक न थी, 24–25 साल। लेने-देने का झगड़ा यहाँ भी न था। पहली शादी थी और माँ-बाप, भाई-बहन से भरा-पूरा परिवार था। राधाकृष्ण जी इससे अधिक और चाहते ही क्या थे। ईश्वर को उन्होंने कोटिश: धन्यवाद दिये, जिसकी कृपा से ऐसा अच्छा वर उन्हें गौरी के लिए मिल गया।

विवाह आगामी आषाढ़ में होना निश्चित हुआ। दोनों तरफ से विवाह की तैयारी हो रही थी। राधाकृष्ण जी की यही तो एक लड़की थी। वे बड़ी तन्मयता के साथ गहने-कपड़ों का चुनाव करते थे। सोचते थे– देर में शादी हुई तो क्या हुआ, वर भी तो कितना अच्छा ढूँढ़ निकाला है। कुंती भी बहुत खुश थी। उसकी आँखों में वह दृश्य झूलने लगता था कि उसका दामाद छोटा साहब हो गया है, बेटी-दामाद छोटे-छोटे बच्चों के साथ उससे मिलने आये हैं। किंतु बच्चों की बात सोचते ही उसे सीताराम जी के दोनों बच्चे तुरंत याद आ जाते और आ जाती उनकी बात। बच्चों की देख-रेख करने वाला कोई नहीं है। फिर वह सोचती– ऊँह, दुनिया में और भी तो लड़कियाँ हैं। कर लें शादी, क्या मेरी गौरी ही है। इस प्रकार पति-पत्नी दोनों ही प्रसन्न थे, पर गौरी से कौन पूछता कि उसके हृदय में कैसी हलचल मची रहती है। रह-रहकर उसे उन बच्चों का भोला-भाला मुँह और मीठी-मीठी बातें याद आ जातीं और साथ ही याद आ जाते विनयी, नम्रता और सादगी की प्रतिमा सीताराम जी। उनकी याद आते ही श्रद्धा से गौरी का माथा अपने आप ही झुक जाता। देशभक्त त्यागी वीरों के लिए उसके हृदय में बड़ा सम्मान था। सीताराम जी ने भी तो देश के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया है। नहीं तो बी.ए. पास करने के बाद क्या प्रयत्न करने पर उन्हें भी नायब तहसीलदारी न मिल जाती? मिलती क्यों नहीं? पर सीताराम जी सरकार की गुलामी पसंद करते तब न? दूसरी ओर थे उसके होने वाले वर— नायब तहसीलदार साहब, जिन्हें अपने आराम, अपने ऐश के लिए, ब्रिटिश

गवर्नमेंट के ज़रा से इंगित मात्र पर निरीह देशवासियों के गले पर छुरी फेरने में ज़रा भी संकोच या हिचक नहीं। जिनके सामने कुछ चाँदी के टुकड़े फेंक दिये जाते हैं और वह दुम हिलाते हुए, निंद्य-से-निंद्य कर्म करने में भी किंचित लज्जित नहीं होते। घृणा से गौरी का जी भर जाता, किंतु उसके इन मनोभावों को जानने वाला यहाँ कोई भी न था। वह रात-दिन एक प्रकार की अव्यक्त पीड़ा से विकल-सी रहती। बहुत चाहती थी कि अपनी माँ से कह दे कि वह नायब तहसीलदार से शादी न करेगी, किंतु लज्जा उसे कुछ भी न कहने देती। ज्यों-ज्यों विवाह की तिथि नजदीक आती, गौरी की चिंता बढ़ती ही जाती थी।

विवाह की निश्चित तारीख से पंद्रह दिन पहले एक दिन एकाएक तार आया कि नायब तहसीलदार साहब के पिता का देहांत हो गया। इस मृत्यु के कारण विवाह साल-भर को टल गया। गौरी के माता-पिता बड़े दुखी हुए किंतु गौरी के सिर पर से जैसे चिंता का पहाड़-सा हट गया।

* * *

इसी बीच सत्याग्रह आंदोलन की लहर देश-भर में बड़ी तीव्र गति से फैल गई। शहर-शहर में गिरफ़्तारियों का ताँता-सा लग गया। रोज़ ही न जाने कितने गिरफ़्तार होते, कितनों को सज़ा होती। कहीं लाठी चार्ज! कहीं 144! सरकार की दमन की चक्की बड़े भयंकर रूप से चल रही थी। गौरी को चिंता थी उन बच्चों की। जब से सत्याग्रह-संग्राम छिड़ा था, तभी से उसे फिकर थी कि न जाने कब सीताराम जी गिरफ़्तार हो जायें। और फिर वे बच्चे बेचारे— उन्हें कौन देखेगा। रोज़ का अखबार ध्यान से पढ़ती और कानपुर का समाचार तो और भी ध्यान से देखती थी। और इसी प्रकार उसने एक दिन पढ़ा कि राजद्रोह के अपराध में सीताराम जी गिरफ़्तार हो गये, और उन्हें एक साल का सपरिश्रम कारावास हुआ है। इस समाचार को पढ़कर गौरी कुछ क्षण तक स्तब्ध-सी खड़ी रही फिर कुछ सोचती हुई टहलने लगी। कुछ ही देर बाद उसने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। वह माँ के पास गयी। माँ कोई पुस्तक देख रही थी। उसने अपने सारे साहस को समेटकर दृढ़ता से कहा– माँ, मैं कानपुर जाऊँगी।

कानपुर में क्या है? आश्चर्य से कुंती ने पूछा।

गौरी– वहाँ बच्चे हैं।

माँ ने उसी स्वर में कहा– बच्चे? कैसी बात करती हो गौरी, पागलों की-सी?

गौरी– नहीं माँ, मैं पागल नहीं हूँ। बच्चों को तुम भी जानती हो। उनके पिता को राजद्रोह के मामले में साल-भर की सज़ा हो गयी है। बच्चे छोटे हैं। मैं जाऊँगी माँ। मुझे जाना ही पड़ेगा।

गौरी के स्वभाव से कुंती भली-भाँति परिचित थी। वह जानती थी कि गौरी जिस बात की हठ पकड़ती है, कभी छोड़ती नहीं। अतएव सहसा वह गौरी का विरोध न कर सकी, बोली– पर तेरे बाबू जी तो बाहर गये हैं, उन्हें तो आ जाने दे।

पर गौरी ने दृढ़ता के साथ कहा– बाबूजी के आने तक नहीं ठहर सकूँगी माँ। मुझे जाने दो। रास्ते में मुझे कुछ कष्ट न होगा। अब मैं काफी बड़ी हो गयी हूँ।

और उसी दिन शाम को नौकर के साथ गौरी कानपुर चली गयी।

साल-भर बाद—

अपनी सज़ा पूरी करके सीताराम जी घर लौटे। इस साल-भर के भीतर उन्होंने एक बार भी बच्चों को न देखा था। उन्हें कायदे के अनुसार हर महीने उनका कुशल-समाचार मिल जाता था, पर लगातार उन्हें बच्चों की चिंता बनी ही रहती थी। जिस कहारिन के भरोसे वे बच्चों को छोड़ गये थे, उसके भी तीन-चार बच्चे थे। वह बच्चों को कैसे रखेगी, सो सीताराम जी जानते थे, पर विवशता थी, क्या करते। सबेरे-सबेरे छह बजे ही जेल से मुक्त कर दिये गये। एक ताँगे पर बैठकर वे घर की ओर चले। जेब में कुछ पैसे थे। एक जगह गरम-गरम जलेबियाँ बन रही थीं। बच्चों के लिए थोड़ी-सी खरीद लीं। घर के दरवाज़े पर पहुँचे। दरवाज़ा खुला था। घर के अंदर पैर रखने में हृदय धड़कता था। न जाने बच्चे किस हालत में हों। वे चोरों की तरह चुपके-चुपके घर में घुसे। परंतु यह क्या? आँगन में पहुँचते ही वे ठगे-से खड़े रह गये। फिर ज़रा आगे बढ़कर उन्होंने कहा– आप?

गौरी ने झुककर उनकी पद-धूलि माथे से लगा ली।

चिता के फूल

रामवृक्ष बेनीपुरी

गाँधीजी के नेतृत्व में पूरा देश आज़ादी के लिए उठ खड़ा हुआ था। छोटे-बड़े सभी लोग राष्ट्रीय आंदोलन में अपना सर्वस्व त्यागकर योगदान कर रहे थे। ऐसे में अंग्रेज़ी सरकार का ज़ुल्म भी लगातार बढ़ता जा रहा था। हज़ारों-लाखों लोग गिरफ़्तार हो रहे थे, अपने प्राणों की आहुति दे रहे थे। नाम-बेनाम तमाम शहादतों से देश आज़ाद हुआ। 'चिता के फूल' कहानी आज़ादी की लड़ाई के गाँव-गाँव पहुँचने और आम जनता की कुर्बानियों की याद दिलाती है। गाँधीजी के प्रभाव में आकर कहानी का मुख्य चरित्र 'रामू' आंदोलन में शामिल होता है और अपनी भूमिका का निर्वहन करते हुए शहीद हो जाता है।

दोपहर से ही खेतों और मेड़ों से एक-एक तिनका इकट्ठा करता हुआ शाम को रामू घास के एक गट्ठर के साथ घर पहुँचा। गट्ठर पटक आँगन में घुसा। माँ ने मकई की चबेनी तैयार कर रखी थी। हरी मिर्च और नमक के साथ जल्द-जल्द उसने दस-पाँच फंक्के मुँह में रखे और लोटा-भर पानी छाक लिया। फिर दरवाज़े पर आ घास की कुट्ठी काटी, उसमें थोड़ा रबिया भूसा मिलाया। खूँटे से बँधी, ब्याई भैंस चुकर रही थी। छींटी-भर उसके निकट रखकर वह चला बुझावन दादा के दरवाज़े।

क्योंकि आज शुक्रवार है न! आज ही तो बुझावन दादा के पास अखबार पहुँचता है क्योंकि डाक-पिउन का बीट आज ही का है। रामू ने पढ़ा-लिखा बहुत ही कम; किसी तरह टो-टाकर काम चला लेता है। माँ-बाप का इकलौता ठहरा। बाप ने स्कूल में पढ़ने को ज़रूर भेजा, किंतु एक तो माहवारी फीस और साप्ताहिक 'सीधे' की जबरदस्त माँग, दूसरे, अकेले बाप से खेती-गृहस्थी सँभलती न थी, अतः वह अधिक दिनों तक स्कूल में नहीं रह सका। किंतु देश और संसार की खबर जानने का उसे बड़ा शौक है। हर शुक्रवार को, जब अखबार आता, रामू बुझावन दादा के नजदीक ज़रूर जाता और उनसे देश का हाल-चाल जानता। बुझावन दादा भी अपने इस किशोर श्रोता को बहुत मानते क्योंकि देहात में अखबार की खबरें जानने के लिए उत्सुक लोगों की संख्या ही कितनी होती है?

जाड़ा शुरू हो रहा था। बुझावन दादा के दरवाज़े पर एक अच्छी-सी धूनी जल रही थी। लोग उसके चारों ओर इकट्ठे हो रहे थे। बुझावन दादा भी वहीं बैठे थे। रामू ने वहाँ पहुँचकर छूटते ही पूछा– "दादा, अखबार का हाल कहिये न। गाँधी बाबा का जहाज बंबई पहुँचा या नहीं?"

"हाँ-हाँ; उसी जहाज पर गाँधी बाबा रामू के लिए स्वराज ला रहे हैं। क्यों रामू, स्वराज में से थोड़ा हमें भी दोगे?"– धूनी तापनेवालों में एक ने व्यंग्य से कहा और ठठाकर हँस पड़ा। रामू इस हँसी पर उबल पड़ा और वह अपनी जबान का चरखा चालू ही करने वाला था कि बुझावन दादा, एक तो विवाद शांत करने के लिए, दूसरे, उस दिन खबर भी ऐसी न थी कि ज्यादा समय तक जब्त रखी जा सके, कह उठे– "अरे, बड़ा अंधेर हो गया रामू, जवाहरलाल जी गिरफ़्तार हो गए, और गाँधीजी भी हो ही चुके होंगे!"

"क्या? जवाहरलाल जी गिरफ़्तार? गाँधीजी भी? कहाँ, क्यों– यह क्या?" आदि कितने ही प्रश्न दनादन किए जाने लगे। बुझावन दादा सबको समझाने लगे– किस तरह गाँधीजी ने राउंड-टेबल कॉन्फ्रेंस में पूर्ण स्वराज्य का दावा रखा। किस तरह उनकी बातों पर उचित ध्यान नहीं दिया गया। किस तरह उसके अंदर यहाँ, अपने देश में, संयुक्त प्रांत के किसानों ने सस्ती की वजह से अपनी मालगुज़ारी कम करने की बात पेश की; किस तरह उनकी माँग ठुकरा दी गई; किस तरह उन लोगों ने कर-बंदी शुरू की, तो उनका नेतृत्व करने के कारण पं. जवाहरलाल

जी को गिरफ़्तार किया गया है। फिर बुझावन दादा ने बताया– जिस समय जवाहरलाल जी गिरफ़्तार किए गए, लगभग उसी समय सीमाप्रांत में किस तरह 'लाल कमीज' दल संगठन के लिए खान अब्दुल गफ्फार खाँ भी सपरिवार निर्वासित किए गए। अब गाँधीजी के लौटने पर बंबई में कांग्रेस कार्यसमिति बैठी है और वायसराय से खतो-किताबत चल रही है। आज के अखबार में इतनी ही खबर है, किंतु उसमें लिखा है कि गाँधीजी का गिरफ़्तार होना भी निश्चित जान पड़ता है; क्योंकि सरकार पहले से ही तैयार बैठी है और नये वायसराय का दावा है कि वह एक महीने के अंदर ही इस आंदोलन को दबा लेंगे।

लोगों ने यह समाचार बड़ी उत्सुकता से सुना। फिर बहस-मुबाहसा प्रारंभ हुआ। किसी ने कहा– भविष्य-पुराण में लिखा है, अंग्रेज़ों का सात 'टोपियों' तक राज्य रहेगा, अभी तो तीन ही हुई हैं, स्वराज कैसे हो? किसी ने कहा– "बिना युद्धेन केशव!"– कहीं बिना लड़ाई के राज्य मिला है? किसी ने कहा– देशी राजे गाँधीजी को मदद दें, तो आज स्वराज हो जाये। फिर किसी ने प्रहलाद की उपमा देकर, तो किसी ने "रावण रथी, बिरथ रघुबीरा" की चौपाइयाँ पढ़कर यह सिद्ध किया कि गाँधीजी ज़रूर जीतेंगे, स्वराज ज़रूर होगा। किंतु रामू चुपचाप सब सुनता रहा। यही नहीं, बहस-मुबाहसे के शोरगुल के बाद लोगों ने पाया कि रामू वहाँ से खिसक चुका था।

ठीक ही रामू वहाँ से खिसक चुका था। यह समाचार ही उसके लिए दुखदायी था। फिर, इस बहस-मुबाहसे ने तो उसके हृदय को छलनी कर दिया। वह ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था, किंतु बुझावन दादा की संगति और टो-टाकर अखबार पढ़ने के कारण अपने देश से, अपनी मातृभूमि से, उसे ममत्व हो चला था। स्वराज में सोने-चाँदी की वर्षा होगी, या भाई का गला भाई काटेंगे– इस बात पर उसने कभी गौर नहीं किया था। किंतु वह इतना ज़रूर जानता था कि दुनिया में केवल एक उसी का देश है, जो गुलामी का तौक पहने हुए है। यह अवस्था उसके लिए असह्य थी। जब गाँधी-इरविन सुलह हुई, और गाँधीजी राउंड टेबल कॉन्फ्रेंस में गए, तो उसने समझा– गुलामी की जंजीर कटेगी नहीं, तो कुछ ढीली ज़रूर होगी; किंतु इस खबर ने उसकी इस आशा पर भी पानी फेर दिया। सबसे ज्यादा उसे खटका, नये वायसराय का यह दंभ कि एक महीने के अंदर ही वह इस आंदोलन को दबा दे सकेंगे। वह चुपचाप घर आया। भैंस दुहने बैठा– कहा नहीं जा सकता, दूध की कितनी धार झबई में पड़ी और कितनी जमीन पर। उस दूध की मीठी धार में उसकी आँखों की नमकीन धारा की दो-एक बूँदें पड़ीं या नहीं– यह भी किसे मालूम? भोजन करने के बाद वह चुपचाप सोने गया। दूसरे दिन उसकी माँ उसकी लाल आँखें देख चौंक पड़ी। उसने समझा, उसकी तबीयत खराब है– शरीर छुआ, ज्वर तो नहीं था। किंतु, वह बेचारी क्या जानती थी कि एक ज्वर ऐसा भी होता है, जो शरीर को ठंडा रखता है, परंतु हृदय को जलाता है।

दिन-भर रामू ने अपने दैनिक कर्म भलीभाँति संपन्न करने की चेष्टा की, किंतु किसी काम में भी उसका मन नहीं लगा। यों ही दो-तीन दिन और बीते। वह मशीन-सा सब काम करता रहा। धीरे-धीरे खबर मिल गई कि गाँधीजी एवं देश के अन्य सभी नेता एक-एक कर गिरफ़्तार कर लिए गए– कांग्रेस कमेटियाँ गैर-कानूनी करार दे दी गईं– चारों ओर गिरफ़्तारी, जब्ती आदि की धूम है। ऐसी हर खबर पर रामू की आत्मा ज़ोर से उससे पूछती– रामू, यह क्या हो रहा है? तुम्हारा भी कोई कर्तव्य इस समय है कि नहीं? उसकी व्याकुलता दिन-दिन भीषण रूप धारण करती जाती।

एक दिन बड़े तड़के रामू घर से निकल पड़ा। उसका कोमल मन इतना हृदय-मंथन बर्दाश्त नहीं कर सकता था।

* * *

घर से चलकर रामू शहर में आया। उसे मालूम था कि कांग्रेस का जिला ऑफिस शहर में है। किंतु कांग्रेस तो गैर-कानूनी घोषित हो चुकी थी, वह किससे पूछे कि कांग्रेस का ऑफिस कहाँ है? शहर में आने पर यह भी पता चला कि जहाँ पहले कांग्रेस का ऑफिस था, वहाँ अब पुलिसवालों ने अपना डेरा डाल रखा है— जहाँ तिरंगा लहराता था, वहाँ यूनियन जैक उड़ रहा है।

रामू असमंजस में पड़ा हुआ था कि उसने अकस्मात देखा, उसी की उम्र के पाँच-छह किशोर झंडे लिए, गीत गाते, आगे बढ़े आ रहे हैं। कांग्रेस तो गैर-कानूनी है, फिर ये नौजवान कहाँ से निकल पड़े? झंडे कहाँ से मिले इन्हें? वे बढ़ते जा रहे थे। रामू उन्हें देखकर मन-ही-मन अनेक तर्क-वितर्क करता उसी ओर आगे खिसक रहा था कि उसने देखा, कुछ पुलिस के जवान दौड़ते हुए उन किशोरों के निकट जा पहुँचे। जाते ही उन्होंने झंडे छीनना शुरू किया। कुछ खींचतान हुई, पर किशोरों के सुकुमार हाथ पुलिस के इस्पाती हाथों से कब जीत सकते थे? झंडे छीन लिए गए और उन्हें गिरफ़्तार कर पुलिस थाने की ओर बढ़ी। वे अब भी जय-जयकार कर रहे और गीत गा रहे थे। उनके पीछे एक छोटी-सी भीड़ भी जमा हो गई थी।

भीड़ और गिरफ़्तार लोगों के साथ पुलिस कुछ दूर चली कि पीछे से सुनायी पड़ा– "महात्मा गाँधी की जय!" सबका ध्यान आकृष्ट हुआ। लोगों ने देखा, एक किशोर-वयस्क बालक हाथ में झंडा लिए जय-जयकार कर रहा है। पुलिस में से एक जवान दौड़ा हुआ उसके निकट पहुँचा और उसे भी गिरफ़्तार कर लिया। यह कौन था? यह था रामू। पुलिस और स्वयंसेवकों में झंडों को लेकर जब छीना-झपटी हो रही थी, एक झंडा उछलकर अलग जा गिरा था। रामू ने उसे छिपाकर रख लिया था, और ज्यों ही वे लोग बढ़े, वह झंडे को उड़ाते हुए जय-जयकार करने लगा। उसने सोचा, कांग्रेस के ऑफिस की तलाश कहाँ तक की जाये, उसे पता भी चले या नहीं? क्यों न इन्हीं लोगों के साथ हो ले? जेल होगी? तो, इसीलिए तो वह आया है। इनसे जान-पहचान हो जाने पर पीछे काम करने में भी सहूलियत होगी।

रामू उन साथियों के साथ थाने पर लाया गया। उसने सोचा, रात में उसे थाने में रहना पड़ेगा, कल मजिस्ट्रेट के सामने वह पेश किया जायेगा, जहाँ उसे सज़ा मिलेगी। किंतु, यहाँ

उसने विचित्र ही हालत देखी। कुछ पुलिस के अफसरों ने सारे कानून को अपने हाथों में कर लिया है। वे इस आंदोलन को दबाने के लिए ज़ुल्म और ज्यादती की हद कर रहे हैं। रामू अभी कच्चा सोना था, किंतु पहली बार ही उसे खरी कसौटी पर चढ़ना पड़ा। थाने के पुलिस-अफसर ने इन सात सुकुमार बच्चों की सब प्रकार परीक्षाएँ लीं– थप्पड़, बेंत, ठोकर, कान पकड़कर उठना-बैठना, दीवार में नाक रगड़ना, कहाँ तक गिनाया जाये? किंतु वाह रे रामू! उसने एक बार भी आह न की, वरन् साथियों को भी ढाढ़स दिलाता रहा। इस अपराध के चलते तो उसे और भी सज़ा भुगतनी पड़ी, किंतु वह डटा रहा तो डटा रहा। पीछे इन सातों को स्टेशन ले जाया गया। कहा गया– तुम पटना– कैंप-जेल में भेजे जाओगे। किंतु उन्हें गाड़ी पर चढ़ाकर, जब गाड़ी खुलने को हुई, साथ के सिपाही वहाँ से चलते बने। कड़ाके के जाड़े में ठिठुरते हुए, सातों बच्चे दूसरे स्टेशन पर उतरे, तो उनकी दुर्दशा का क्या पूछना? उनका क्षत-विक्षत शरीर देखकर स्टेशन-मास्टर को भी दया आ गई। उनकी वह रात उस दयालु स्टेशन-मास्टर की ही शरण में कटी, और भोर ही, छह मील पैदल चलकर ये कांग्रेस-शिविर में आ पहुँचे— वह गुप्त शिविर, जिसकी खबर सिर्फ़ कांग्रेस कार्यकर्ताओं को ही रहती थी।

कांग्रेस-शिविर में पहुँचकर रामू को सबसे प्रसन्नता यह देखकर हुई कि गैर-कानूनी करार दिए जाने पर भी कांग्रेस के कामों की शृंखला पूरी तरह अक्षुण्ण है। देहातों से लोग लगातार आते-जाते हैं। थाने-थाने में कांग्रेस के कार्यक्रमों को अच्छी तरह संपन्न किया जाता है और उसकी बाज़ाब्ता रिपोर्टें आती हैं। ये रिपोर्टें डाक से न आकर खास स्वयंसेवकों द्वारा आती हैं। स्वराजी डाक का एक बाज़ाब्ता संगठन हो गया है। एक जिले का दूसरे जिले से और सब जिलों का प्रांत से घनिष्ठ संबंध इस स्वराजी डाक के कारण बना हुआ है। राष्ट्रीय अखबार बंद हैं, किंतु कांग्रेस की बुलेटिनें नियमित रूप से प्रकाशित ही नहीं होतीं, बाज़ार में बिकती भी हैं। सबसे विचित्र तो यह है कि पुलिस प्रायः इधर-उधर छापा मारा करती है, किंतु आज तक यह पता नहीं पा सकी कि कांग्रेस का शिविर यथार्थत: है कहाँ? शिविर के स्थान बदलते रहते, एक तरह से शिविर एक चलता-फिरता पड़ाव बना हुआ है। कांग्रेस के सभी कार्यकर्ताओं में फौजी प्रवृत्ति बढ़ रही है। वे प्रकट और गुप्त लड़ाइयों की कलाएँ धीरे-धीरे जानने लगे हैं। नये वायसराय ने कहा था, वह एक महीने में आंदोलन को कुचल देगा; उसकी शेखी धूल में मिल गई– रामू के आनंद का क्या कहना?

रामू की वीरता की कहानी उन किशोर स्वयंसेवकों से सुनकर शिविर-पति ने उसकी प्रशंसा की, उसकी पीठ ठोंकने से भी वह नहीं चूके। रामू की उम्र यही तेरह-चौदह साल की थी– बड़ा भोला-भाला-सा लगता था उसका चेहरा। किंतु उसकी तत्परता और उत्तरदायित्व के ज्ञान ने शिविर के सभी लोगों के मन मोह लिए। जो काम उसे सुपुर्द किया जाता, वह भली-भाँति संपन्न करता। पीछे चलकर डाक ले आने और पहुँचाने में तो उसने बड़ी नामवरी हासिल की।

न केवल देहातों से, किंतु जिला ऑफिस से प्रांतीय ऑफिस में डाक ले जाने और ले आने का काम भी वही करता। सरेआम स्टेशन पर जाता, टिकट कटाता, रेल पर सवार होता, प्रांतीय ऑफिस में पहुँचता, किंतु क्या मजाल कि कोई उसे पकड़ पावे। वह भोला-भाला चेहरा! फिर वेश भी तो वह प्रायः बदलता! एक दिन जब भिखमंगे की सूरत उसने बनायी, तो सभी साथी हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए। यों ही एक दिन उसने गूँगे का स्वाँग रचा, तो ठहाके-पर-ठहाके लगे। सी.आई.डी. की पूरी पलटन के रहते हुए भी आखिर तक सरकार इस डाक-प्रबंध का पता न पा सकी, उसमें रामू-जैसे कुछ किशोरों की दिलेरी और कौशल ही काम करते थे।

हाँ, सिर्फ़ कौशल का ही नहीं, यह दिलेरी का काम भी था। सबके सामने, सरेआम, गुप्त चीज़ों को लेकर यों आना-जाना क्या कम हिम्मत का काम है? फिर जब कभी 'स्वराजी डाक' के हरकारे पकड़े जाते, उनकी जो सेवा-शुश्रूषा की जाती, उसे मत पूछिए। यह आग से खिलवाड़ करना था, काले नाग से खिलवाड़ करना था।

किंतु कुछ दिनों तक इस काम को करने के बाद रामू का मन इस आँख-मिचौली से ऊब उठा। वह खुलकर मोर्चा लेना चाहता था। और, जहाँ चाह, वहाँ राह!

एक दिन सरकार द्वारा जब्त किए गए कांग्रेस आश्रम पर चढ़ाई करने का कार्यक्रम निश्चित हुआ। जब पुलिस हमारे आश्रम पर जबर्दस्ती कब्जा कर लेती है, तब हम अपने आश्रम को फिर से दखल करने की कोशिश क्यों न करें? सुना गया, पुलिस इसकी भनक पाकर पहले से तैयारी कर रही है। कहा जाता था, वह बड़ी सख्ती से काम लेगी इस बार। गोलियाँ भी चलायी जायेंगी, इसकी भी अफ़वाह थी। इन बातों को सुन-सुनकर रामू का हृदय और भी उछलता। कभी-कभी माँ-बाप का ध्यान आने पर, यह समझकर कि वही अपने माँ-बाप के बुढ़ापे का एकमात्र सहारा है, अतः यदि उसकी मृत्यु हुई, तो वे बेचारे तड़प-तड़पकर मर जायँगे, वह विचलित-सा होने लगता। किंतु उसी समय अनेकों शहीदों की स्मृतियाँ उसके हृदय को मज़बूत कर देतीं। वह उत्सुकता से निश्चित दिन की प्रतीक्षा करने लगा।

एक दिन सुबह-सुबह जब पुलिसवाले झपकियों में ही थे और शहरवाले भोर की मधुर नींद के मज़े ले रहे थे, 'स्वतंत्र भारत की जय' के शोर से दिशाएँ निनादित हो उठीं। कांग्रेस आश्रम के चारों ओर थोड़ी देर तक शोरगुल रहा– फिर दो-तीन बार गोलियों की धायँ-धायँ सुनायी दी– और अंत में सन्नाटा! इसे शांति कहना तो इस शब्द की हत्या करना होगा।

* * *

ज़रा हम अब रामू के गाँव चलें!

उसके माँ-बाप उस भोर में उसे न पाकर बहुत चिंतित हुए। भैंस अभी तक बथान में बँधी चुकर रही थी– उसका पाड़ा एक कोने में अलग शोर कर रहा था। रामू भैंस को तड़के घर से बाहर करता, उसे खिलाता, फिर दुहता। आज वह कहाँ चला गया?

शायद निकट के गाँव में किसी काम से गया हो– माँ-बाप ने ऐसा मान लिया और उस पर नाराज होते हुए कि क्यों बिना खबर दिए वह यों निकल गया, शांत हुए। किंतु, जब दोनों प्राणी बिना खाये-पिये दोपहर तक राह देखते रहे और रामू नहीं आया, तो उनकी चिंता बढ़ने लगी। बुझावन दादा से भी कुछ पता नहीं चला, तब तो उनके प्राण सूखने लगे। शाम हुई। अब तो चिंता का पारावार नहीं रहा। माँ से नहीं रहा गया। उस झुटपुटे के वक्त, जिस समय निकट के दरवाज़े पर देहाती भजनों की जमात गा रही थी– "साँझ भई घर आए न मुरारी, कहाँ अटके बनवारी"। वह बेचारी अपने मुरारी के विरह में व्याकुल हो फूट-फूटकर रोने लगी। बेचारे पिता की आँखों से भी आँसू बहने लगे। गाँव के कुछ लोग इस क्रंदन-ध्वनि पर आकृष्ट हो उन्हें सांत्वना देने को पहुँचे। रामू— ऐसा सुशील, समझदार बेटा यों एकाएक कहीं चल दे— यह बात सबको आश्चर्यजनक मालूम पड़ रही थी।

किंतु, यह समस्या भी तुरंत ही हल हो गई। इसी गाँव के एक सज्जन कहीं बाहर से घर लौट रहे थे। रामू के दरवाज़े पर आकर उन्होंने खबर दी कि रामू की उनसे रास्ते में भेंट हुई है– उसने कहा है, बाबूजी से कह देना, मैं तीर्थ यात्रा करने जा रहा हूँ, शीघ्र लौटूँगा। इस खबर ने अनिश्चितता को कुछ हद तक दूर किया, थोड़ा आश्वासन मिला। पर आश्चर्य यही हो रहा था कि इस बालपने में ही यह वैराग्य उसमें कैसे आ गया?

पर, यह तीर्थ कौन-सा है, और वह वैराग्य कैसा है– इसका पता चल गया उस दिन, जब दारोगा जी सदल-बल पहुँचकर गाँव को प्रकंपित और आतंकित करने लगे। उनका दल पूछ-ताछ करते सीधे रामू के दरवाज़े पर पहुँचा, और उसके दरवाज़े पर बँधी भैंस को कुर्क किया। मालूम हुआ, रामू कांग्रेस के काम में गिरफ़्तार हुआ है, और उसे छह महीने की सख्त कैद और पचास रुपये जुर्माने की सजा हुई है, जिस जुर्माने की वसूली में यह कुर्की की गई है। दारोगा जी की जबानी यह भी पता चला कि उस दिन शहर में भीड़ पर गोलियाँ चलीं, उसमें रामू भी था और भाग्य से ही वह बच गया, घायल होकर ही रह गया!

भैंस की कुर्की की ज़रा भी परवा उसके माँ-बाप को नहीं हुई। जिस दिन से रामू गया, उसके पिताजी विचित्र ढंग से अन्यमनस्क बने रहते। कुछ दिनों तक तो कुछ काम ही नहीं किया; अब करते भी, तो जैसे मशीन काम कर रही हो— न रस, न उत्साह। भैंस रामू की सबसे प्रिय यादगार थी। उसके खरीदने में उसकी ज़िद काम कर गई थी, उसके पालने में उसका हाथ था, उसके दूध-दही का सबसे बड़ा भोक्ता भी वही था। रामू के पिता के हृदय में यह भैंस बुरी तरह कसक पैदा करती। वह रामू से ऐसी घुल मिल गई थी कि उसके जाते ही खाने-पीने में उदासीनता दिखलाने लगी। वह सूख चली थी— दूध भी कम देने लगी थी। जब दारोगा जी ने उसे कुर्क किया और सिपाही उसे खोलकर एक मोटा डंडा उसकी पीठ पर देकर, उसे ले चले, तो एक बार रामू के पिता को ऐसा लगा, मानो कोई कलेजा निकाले जा रहा है। किंतु, वह कलेजा नहीं,

कलेजे का काँटा था। इसके निकालने में दर्द था, परंतु घाव भरने की सूरत भी यही थी। उन्होंने सोचा, जाने दो, रामू ही नहीं, तो भैंस रखकर क्या होगा? फिर भैंस की क्या परवा करते बेचारे, उन्हें तो रामू के लिए दूनी चिंता हुई। वह घायल हुआ, न जाने कहाँ-कहाँ घाव लगे हों। वह जेल में है, न जाने वह कैसे रखा जाता हो? उसी क्षण, बिना किसी से कुछ कहे, वह शहर की ओर चल पड़े।

* * *

रामू पटना कैंप जेल में है।

भला, यह जेल है, या मेला? काँटों के तार के घेरे के अंदर है यह जेल, जहाँ से चारों ओर के खेतों में वसंत की बहार देखिए। न वार्डर का पहरा; न जेल-अधिकारियों की छेड़छाड़। कहीं सभाएँ हो रही हैं, कहीं कवि-सम्मेलन जमा है, कहीं ताश और शतरंज पर लोग जुटे हैं, कहीं स्कूलों के क्लास लगे हैं। कबड्डी, आसन, कुश्ती, सेवा-दल का परेड, जिसमें जी लगे, शामिल होइए। रविवार के दिन जब मुलाकाती आते, एक हुजूम-सा मच जाता। साधारणतः खाना-पीना भी अच्छा ही था— उसमें भी पंद्रहवें दिन जब 'भोज' मिलता, तब का क्या कहना? यहाँ आकर रामू ने पढ़ना-लिखना भी शुरू किया और दीन-दुनिया को समझने की भी चेष्टा की। मन के लायक उसे कुछ दोस्त भी मिल गए, जिनको लेकर वह खूब ही मस्त रहता।

इसी बीच एक रविवार को उसके पिता उससे भेंट करने को आ पहुँचे। रामू उनकी दशा देखकर द्रवित हो गया। उसके पिताजी हड्डियों का ढाँचा-मात्र हो रहे थे। रामू ने आश्वासन दिया– यहाँ उसे कोई तकलीफ़ नहीं है, गोलियाँ जब चलीं, तो भाग्यवश वह बच गया, केवल पैर में कुछ छर्रे लगे। अब तो चार ही महीने की देर है, वह शीघ्र ही आकर माँ के चरण छुएगा।

किंतु, आह री उसकी माँ और आह रे उसके पिता! क्या उनका ऐसा अच्छा भाग्य था?

कैंप-जेल में ऊपर-ऊपर जितना आनंद था, भीतर-भीतर उसमें उतना ही खोखलापन था। वह बीमारियों का अड्डा बना हुआ था। डिसेंट्री का वहाँ बोलबाला था। निमोनिया वहाँ की मारक बीमारी थी। और भी 'किं रूपं किमाकारं' बीमारियाँ वहाँ तांडव-नृत्य करती रहतीं। ऐसा भी समय आया कि कुल आबादी की एक चौथाई बीमार हो शय्याशायी हो गई। वहाँ बीमार पड़ना भी कोई साधारण बात न थी। एक बार जो बीमार पड़ा, वह समझता, अब गया! जेल में डॉक्टर भी थे, दवाइयाँ भी थीं। सुपरिंटेंडेंट अपने को बीमारों का बाप ही समझता और कहता। अपनी समझ से दूध और फल का भी उसने यथेष्ट प्रबंध कर रखा था, किंतु न-जाने क्यों, इतने पर भी बीमारी वहाँ एक जीवित भूत थी— एक प्राण-पीड़क आतंक।

रामू भी बीमार पड़ा।

पहले तो उसे डिसेंट्री की थोड़ी शिकायत हुई। अपने वार्ड में रहकर और माँड़-भात खाकर ही उसने उसे भगा देना चाहा। किंतु पीछे उसे अस्पताल जाना ही पड़ा, क्योंकि डिसेंट्री के साथ बुखार भी आने लगा। अस्पताल क्या था, साधारण वार्डों को ही अस्पताल में परिणत कर लिया गया था, जहाँ बहुतों को जमीन में ही लेटना पड़ता। अस्पताल के नाम पर दो खास कमरे भी थे, किंतु एक तो वहाँ 'सीट' कम, फिर वे तो कुछ 'खास बीमारों' के लिए रिजर्व रखे जाते, अतः रामू को भी उन वार्डोंवाले, नाम के अस्पताल में ही रहना पड़ा और इन वार्डों के ही लायक उसकी दवा भी हुई। धीरे-धीरे बीमारी बढ़ती गई। कुछ स्वयंसेवकों ने, जो उसकी वीरता को पहचान गए थे, उसके गुणों ने जिन्हें उसका मित्र या भक्त बना लिया था, उसकी सेवा में कुछ भी उठा नहीं रखा; किंतु बीमारी केवल तीमारदारी से ही तो अच्छी नहीं होती!

अब हालत ऐसी हो गई कि मित्रों ने उसके जीवन की आशा खो दी। खून के दस्त और अत्यधिक बुखार। वह प्रायः चेतना शून्य हो जाता, और अंट-संट बकने लगता। कभी-कभी उसके मुँह से 'माँ', 'बाबूजी' ऐसे शब्द भी निकलते; लेकिन ज्यादातर वह उन घटनाओं को दुहराता-सा मालूम होता, जो इधर के कुछ महीनों में उसकी जिंदगी में घटी थीं। "स्वराज नहीं

देख सकूँगा?”– एक दिन जब थोड़ी रात बाकी थी, उसने टूटे-फूटे शब्दों में यह कहा, और धाड़ मारकर रोने लगा। फिर दो-चार हिचकियाँ और…

अरे, यह क्या हो गया? उसके साथी भौचक्के हो ‘डॉक्टर-डॉक्टर’ पुकारने लगे; लेकिन जब तक डॉक्टर आवे, तब तक तो रामू चल बसा था!

लोगों ने देखा, उस वार्ड से भोर में एक लाश निकाली जा रही है। इस तरह लाशों का निकलना कैंप जेल के लिए नयी बात नहीं रह गई थी। शुरू में जब लोग मरे थे, तो उनकी लाशें चौक पर रखी गई थीं और जेल के एक-एक राजबंदी ने उन पर फूल चढ़ाए थे। लेकिन फूल भी चुक गए थे, उत्साह भी कुंठित हो चुका था। जहाँ दूसरे-तीसरे दिन लाशें निकलें, वहाँ श्रद्धांजलि की यह प्रथा कैसे जारी रखी जा सकती थी? हाँ, रामू के कुछ साथी और मित्र ज़रूर उसकी लाश के पीछे-पीछे फाटक तक जा रहे थे। उनकी आँखों से जो मोती झरते जाते थे, वे प्रभात की सूर्य-किरणों के स्पर्श से कभी लाल और कभी फिरोज़ी बनकर चमक उठते थे।

घोर देहात में था रामू का घर। उसकी लाश जेल से बाहर ले जाने के लिए समय पर कोई पहुँच नहीं पाया। ऐसे मृत राजबंदियों के लिए सरकारी प्रबंध था, कुछ वार्डर ही उनकी लाशें गंगा-किनारे ले जाते और सरकार द्वारा कृपा कर दी गई तीन मन लकड़ियों से अंतिम संस्कार कर देते। रामू के भाग्य में भी यही बदा था!

किंतु, यह क्या? जब उसकी चिता ठंडी पड़ रही थी, अचानक दो व्यक्ति रोते-चिल्लाते आते दिखायी पड़े। रामू-रामू कहते, वे लगातार छाती पीट रहे थे। अब तक वार्डरों के हृदय में एक हल्की उदासी के भाव-मात्र थे, जो ऐसे अवसरों पर स्वभावतः ही आ जाते हैं। किंतु इन दोनों को देखते ही जैसे उनके हृदय की करुणा-मंदाकिनी भी अचानक फूट निकली। वे आगे बढ़कर उन्हें समझाने की चेष्टा करने लगे। बूढ़े को पकड़ा; वह धाड़ मारकर रो पड़ा, किंतु उस बूढ़ी को क्या करें जो, लगता था, इस चिता को ही बटोरकर हृदयस्थ कर लेगी! अब चेतन की क्या बात, जड़ भी रो रहे थे, मानो, गंगा का वह किनारा, किनारे पर का वह बूढ़ा पीपल का पेड़, गंगा की धार— सब आँसुओं में डूबे हुए थे।

कोई वहाँ ऐसा नहीं था, जो इसकी घोषणा करता कि रामू ने अपने को देश के लिए कुर्बान कर दिया; किसी के मुँह से उस दिन रामू की जयकार नहीं निकली; उसका जनाज़ा फूलों-भरा भी नहीं निकल पाया था! एक जंगली फूल की तरह यह खिला और अनदेखे झड़ पड़ा— उसकी शहादत की साक्षिणी एकमात्र माँ गंगा रहीं, जिनके पावन-जल में, जी-भरकर रो-धो लेने के बाद, उसके पिता ने काँपते हाथों से उसकी चिता से चुनकर पाँच फूल अर्पित किए— चिता के वे फूल, श्वेत-शुभ्र, पावन-पवित्र!

गांधी जी का जंतर

तुम्हें एक जंतर देता हूँ। जब भी तुम्हें संदेह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आज़माओ :

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शक्ल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुँचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानी क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा, जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा संदेह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

उपन्यास-अंश

रंगभूमि

प्रेमचंद

'रंगभूमि' उपन्यास में प्रेमचंद ने गाँधीजी के विचारों और सिद्धांतों का सृजनात्मक उपयोग किया है। रंगभूमि का कथानायक 'सूरदास' सत्य, अहिंसा और न्याय के लिए निरंतर संघर्ष करता है और अपने विरोधियों के भी हृदय में जगह बना लेता है और इस तरह उन्हें सत्य और न्याय के पक्ष में सोचने के लिए विवश कर देता है।

उपन्यास के पहले अंश में सूरदास अपने घर को जला देने वाले व्यक्ति भैरों की भी मदद करता है और उसके भीतर की नफ़रत को अपने प्रेम से जीत लेता है। उपन्यास के दूसरे अंश में मशीनों के कारण बदलते सामाजिक जीवन का चित्रण है।

इंद्रदत्त – सूरदास, तुमने तो बड़ी जल्दी की। वहाँ लोग तुम्हारा जुलूस निकालने की तैयारियाँ किये हुए थे। राजा साहब ने बाज़ी मार ली। अब बतलाओ, वे रुपये क्या हों, जो जुलूस के खर्च के लिए जमा किये गए थे?

सूरदास – अच्छा ही हुआ कि मैं यहाँ चुपके से आ गया, नहीं तो शहर-भर में घूमना पड़ता! जुलूस बड़े-बड़े आदमियों का निकलता है कि अंधे-भिखारियों का? आप लोगों ने जरीबाना देकर छुड़ा दिया, यही कौन कम धरम किया?

इंद्रदत्त – अच्छा बताओ, ये रुपये क्या किये जायें? तुम्हें दे दूँ?

सूरदास – कितने रुपये होंगे?

इंद्रदत्त – कोई तीन सौ होंगे।

सूरदास – बहुत हैं। इतने में भैरों की दुकान मज़े में बन जायेगी।

जगधर को बुरा लगा, बोला– पहले अपनी झोंपड़ी की तो फिकर करो!

सूरदास – मैं इसी पेड़ के नीचे पड़ रहा करूँगा, या पंडाजी के दालान में।

जगधर – जिसकी दुकान जली है, वह बनवायेगा, तुम्हें क्या चिंता है?

सूरदास – जली तो है मेरे ही कारण!

जगधर – तुम्हारा घर भी तो जला है?

सूरदास – यह भी बनेगा, लेकिन पीछे से। दुकान न बनी, तो भैरों को कितना घाटा होगा! मेरी भीख तो एक दिन भी बंद न होगी!

जगधर – बहुत सराहने से भी आदमी का मन बिगड़ जाता है। तुम्हारी भलमनसी का लोग बखान करने लगे, तो अब तुम सोचते होगे कि ऐसा का करूँ, जिसमें और बड़ाई हो। इस तरह दूसरों की ताली पर नाचना न चाहिए।

इंद्रदत्त – सूरदास, तुम इन लोगों को बकने दो, तुम ज्ञानी हो, ज्ञान-पक्ष को मत छोड़ो। ये रुपये पास रखे जाता हूँ; जो इच्छा हो, करना।

इंद्रदत्त चला गया तो सुभागी ने सूरदास से कहा– उसकी दुकान बनवाने का नाम न लेना।

सूरदास – मेरे घर से पहले उसकी दुकान बनेगी। यह बदनामी सिर पर कौन ले कि सूरदास ने भैरों का घर जलवा दिया। मेरे मन में यह बात समा गई है कि हमीं में से किसी ने उसकी दुकान जलायी।

सुभागी – उससे तुम कितना ही दबो, पर वह तुम्हारा दुश्मन ही बना रहेगा। कुत्ते की पूँछ कभी सीधी नहीं होती।

सूरदास – तुम दोनों फिर एक हो जाओगे, तब तुझसे पूछूँगा।

सुभागी – भगवान मार डाले, पर उसका मुँह न दिखावे।

सूरदास – मैं कहे देता हूँ, एक दिन तू भैरों के घर की देवी बनेगी।

सूरदास रुपये लिए हुए भैरों के घर की ओर चला। भैरों रपट करने जाना तो चाहता था, पर शंका हो रही थी कि कहीं सूरदास की झोंपड़ी की भी बात चली, तो क्या जवाब दूँगा। बार-बार इरादा कर रुक जाता था। इतने में सूरदास को सामने आते देखा, तो हक्का-बक्का रह गया। विस्मित होकर बोला– अरे, क्या जरीबाना दे आया क्या?

बुढ़िया बोली– बेटा, इसे ज़रूर किसी देवता का इष्ट है, नहीं तो वहाँ से कैसे भाग आता!

सूरदास ने बढ़कर कहा– भैरों, मैं ईश्वर को बीच में डालकर कहता हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम कि तुम्हारी दुकान किसने जलायी। तुम मुझे चाहे जितना नीच समझो, पर मेरी जानकारी में यह बात कभी न होने पाती। हाँ, इतना कह सकता हूँ कि यह किसी मेरे हितू का काम है।

भैरों – पहले यह बताओ कि तुम छूट कैसे आये? मुझे तो यही बड़ा अचरज है।

सूरदास – भगवान की इच्छा। शहर के कुछ धर्मात्मा आदमियों ने आपस में चंदा करके मेरा जरीबाना भी दे दिया और कोई तीन सौ रुपये जो बच रहे हैं, मुझे दे गए हैं। मैं तुमसे यह कहने आया हूँ कि तुम ये रुपये लेकर अपनी दुकान बनवा लो, जिसमें तुम्हारा हरज न हो। मैं सब रुपये ले आया हूँ।

भैरों भौचक्का होकर उसकी ओर ताकने लगा, जैसे कोई आदमी आकाश से मोतियों की वर्षा होते देखे। उसे शंका हो रही थी कि इन्हें बटोरूँ या नहीं, इनमें कोई रहस्य तो नहीं है, इनमें कोई ज़हरीला कीड़ा तो नहीं छिपा हुआ है, कहीं इनको बटोरने से मुझ पर कोई आफ़त तो न आ जायेगी। उसके मन में प्रश्न उठा, यह अंधा सचमुच रुपये देने के लिए आया है या मुझे ताना दे रहा है। ज़रा इसका मन टटोलना चाहिए, बोला– तुम अपने रुपये रखो, यहाँ कोई रुपयों के भूखे नहीं हैं! प्यासे मरते भी हों, तो दुश्मन के हाथ से पानी न पियें।

सूरदास – भैरों, हमारी-तुम्हारी दुश्मनी कैसी? मैं तो किसी को अपना दुश्मन नहीं देखता। चार दिन की ज़िंदगानी के लिए क्या किसी से दुश्मनी की जाये! तुमने मेरे साथ कोई बुराई नहीं की। तुम्हारी जगह मैं होता और समझता कि तुम मेरी घरवाली को बहकाए लिए जाते हो, तो मैं भी वही करता, जो तुमने किया। अपनी आबरू किसको प्यारी नहीं होती? जिसे अपनी आबरू प्यारी न हो, उसकी गिनती आदमियों में नहीं, पशुओं में है। मैं तुमसे सच कहता हूँ, तुम्हारे ही लिए मैंने ये रुपये लिए, नहीं तो मेरे लिए तो पेड़ की छाँह बहुत थी। मैं जानता हूँ, अभी तुम्हें मेरे ऊपर संदेह हो रहा है, लेकिन कभी-न-कभी तुम्हारा मन मेरी ओर से साफ़ हो जायेगा। ये रुपये लो और भगवान का नाम लेकर दुकान बनवाने में हाथ लगा दो। कम पड़ेंगे, तो जिस भगवान ने इतनी मदद की है, वही भगवान और मदद भी करेंगे।

भैरों को इन वाक्यों में सहृदयता और सज्जनता की झलक दिखायी दी। सत्य विश्वासोत्पादक होता है। नरम होकर बोला– आओ, बैठो, चिलम पियो। कुछ बातें हों, तो समझ में आये। तुम्हारे मन का भेद ही नहीं खुलता। दुश्मन के साथ कोई भलाई नहीं करता, तुम मेरे साथ क्यों इतनी मेहरबानी करते हो?

सूरदास – तुमने मेरे साथ कौन-सी दुश्मनी की? तुमने वही किया, जो तुम्हारा धरम था! मैं रात-भर हिरासत में बैठा यही सोचता रहा कि तुम क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हो, मैंने तुम्हारे साथ कोई बुराई नहीं की, तो मुझे मालूम हुआ कि तुम मेरे साथ कोई बुराई नहीं कर रहे हो। यही तुम्हारा धरम है। औरत के पीछे तो खून हो जाता है। तुमने नालिस ही कर दी, तो कौन बुरा काम किया! बस, अब तुमसे मेरी यही विनती है कि जिस तरह कल भरी अदालत में पंचों ने मुझे निरपराध कह दिया, उसी तरह तुम भी मेरी ओर से अपना मन साफ़ कर लो। मेरी इससे भी बड़ी दुर्गत हो अगर मैंने तुम्हारे साथ कोई घात किया है। हाँ, मुझसे एक ही बात नहीं हो सकती। मैं सुभागी को अपने घर से निकाल नहीं सकता। डरता हूँ कि कोई आड़ न रहेगी, तो न जाने उसकी क्या दशा हो। मेरे यहाँ रहेगी, तो कौन जाने, कभी तुम्हीं उसे फिर रख लो।

भैरों का मलिन हृदय इस आंतरिक निर्मलता से प्रतिबिंबित हो गया। आज पहली बार उसे सूरदास की नेकनीयती पर विश्वास हुआ। सोचा– अगर इसका दिल साफ़ न होता, तो मुझसे ऐसी बातें क्यों करता? मेरा कोई डर तो इसे है नहीं। मैं जो कुछ कर सकता था, कर चुका। इसके साथ तो सारा शहर है। सबों ने जरीबाना अदा कर दिया। ऊपर से कई सौ रुपये और दे गए। मुहल्ले में भी इसकी धाक फिर बैठ गई। चाहे तो बात-की-बात में मुझे बिगाड़ सकता है। नीयत साफ़ न होती, तो अब सुभागी के साथ आराम से रहता। अंधा है, अपाहिज है, भीख माँगता है; पर उसकी कितनी मरजाद है, बड़े-बड़े आदमी आव-भगत करते हैं! मैं कितना अधम, नीच आदमी हूँ, पैसे के लिए रात-दिन दगा-फ़रेब करता रहता हूँ। कौन-सा पाप है, जो मैंने नहीं किया! इस बेचारे का घर जलाया, एक बार नहीं, दो बार। इसके रुपये उठा ले गया। यह मेरे साथ नेकी ही करता चला आता है। सुभागी के बारे में मुझे शक-ही-शक था। अगर कुछ नीयत बद होती, तो इसका हाथ किसने पकड़ा था, सुभागी को खुले-खजाने रख लेता। अब तो अदालत-कचहरी का भी डर नहीं रहा। यह सोचता हुआ वह सूरदास के पास आकर बोला– सूरे, अब तक मैंने तुम्हारे साथ जो बुराई-भलाई की, उसे माफ़ करो। आज से अगर तुम्हारे साथ कोई बुराई करूँ, तो भगवान मुझसे समझे। ये रुपये मुझे मत दो, मेरे पास रुपये हैं। ये भी तुम्हारे ही रुपये हैं। दुकान बनवा लूँगा। सुभागी पर भी मुझे अब कोई संदेह नहीं रहा। मैं भगवान को बीच

में डालकर कहता हूँ, अब मैं कभी उसे कोई कड़ी बात तक न कहूँगा। मैं अब तक धोखे में पड़ा हुआ था। सुभागी मेरे यहाँ आने के लिए तुम्हारी बात को नाहीं तो न करेगी?

सूरदास – राज़ी ही है, बस उसे यही डर है कि तुम फिर मारने-पीटने लगोगे।

भैरों – सूरे, अब मैं उसे भी पहचान गया। मैं उसके जोग नहीं था। उसका ब्याह तो किसी धर्मात्मा आदमी से होना चाहिए था। (धीरे से) आज तुमसे कहता हूँ, पहली बार भी मैंने ही तुम्हारे घर में आग लगायी थी और तुम्हारे रुपये चुराये थे।

सूरदास – उन बातों को भूल जाओ, भैरों! मुझे सब मालूम है। संसार में कौन है, जो कहे कि मैं गंगाजल हूँ। जब बड़े-बड़े साधु-संन्यासी माया-मोह में फँसे हुए हैं, तो हमारी-तुम्हारी क्या बात है! हमारी बड़ी भूल यही है कि खेल को खेल की तरह नहीं खेलते। खेल में धांधली करके कोई जीत ही जाये, तो क्या हाथ आयेगा? खेलना तो इस तरह चाहिए कि निगाह जीत पर रहे, पर हार से घबराएँ नहीं, ईमान को न छोड़ें। जीत कर इतना न इतराएँ कि अब कभी हार होगी ही नहीं। यह हार-जीत तो ज़िंदगानी के साथ है। हाँ, एक सलाह की बात कहता हूँ। तुम ताड़ी की दुकान छोड़कर कोई दूसरा रोज़गार क्यों नहीं करते?

भैरों – जो कहो, वह करूँ। यह रोज़गार खराब है। रात-दिन जुआरी, चोर, बदमाश आदमियों का ही साथ रहता है। उन्हीं की बातें सुनो, उन्हीं के ढंग सीखो। अब मुझे मालूम हो रहा है कि इसी रोज़गार ने मुझे चौपट किया। बताओ, क्या करूँ?

सूरदास – लकड़ी का रोज़गार क्यों नहीं कर लेते? बुरा नहीं है। आजकल यहाँ परदेशी बहुत आयेंगे, बिक्री भी अच्छी होगी। जहाँ ताड़ी की दुकान थी, वहीं एक बाड़ा बनवा दो और इन रुपयों से लकड़ी का काम करना शुरू कर दो।

भैरों – बहुत अच्छी बात है। मगर ये रुपये अपने ही पास रखो। मेरे मन का क्या ठिकाना! रुपये पाकर कोई और बुराई न कर बैठूँ। मेरे जैसे आदमी को तो कभी आधे पेट के सिवा भोजन न मिलना चाहिए। पैसे हाथ में आये, और सनक सवार हुई।

सूरदास – मेरे घर न द्वार, रखूँगा कहाँ?

भैरों – इससे तुम अपना घर बनवा लो।

सूरदास – तुम्हें लकड़ी की दुकान से नफ़ा हो, तो बनवा देना।

भैरों – सुभागी को समझा दो।

सूरदास – समझा दूँगा।

सूरदास चला गया। भैरों घर गया, तो बुढ़िया बोली– तुझसे मेल करने आया था न?

भैरों – हाँ, क्यों न मेल करेगा, मैं बड़ा लाट हूँ न! बुढ़ापे में तुझे और कुछ नहीं सूझता। यह आदमी नहीं, साधु है!

* * *

फैक्टरी करीब-करीब तैयार हो गई थी। अब मशीनें गड़ने लगीं। पहले तो मज़दूर-मिस्त्री आदि प्राय: मिल के बरामदों ही में रहते थे, वहीं पेड़ों के नीचे खाना पकाते और सोते; लेकिन जब उनकी संख्या बहुत बढ़ गई, तो मुहल्ले में मकान ले-लेकर रहने लगे। पांडेपुर छोटी-सी बस्ती तो थी ही, वहाँ इतने मकान कहाँ थे; नतीजा यह हुआ कि मुहल्लेवाले किराये के लालच से परदेशियों को अपने-अपने घरों में ठहराने लगे। कोई परदे की दीवार खिंचवा लेता था, कोई खुद झोंपड़ा बनाकर उसमें रहने लगता और मकान भड़ैतों को दे देता। भैरों ने लकड़ी की दुकान खोल ली थी। वह अपनी माँ के साथ वहीं रहने लगा, अपना घर किराये पर दे दिया। ठाकुरदीन ने अपनी दुकान के सामने एक टट्टी लगाकर गुजर करना शुरू किया, उसके घर में एक ओवरसियर आ डटे। जगधर सबसे लोभी था, उसने सारा मकान उठा दिया और आप एक फूस के छप्पर में निर्वाह करने लगा। नायकराम के बरामदे में तो नित्य एक बरात ठहरती थी। यहाँ तक लोभ ने लोगों को घेरा कि बजरंगी ने भी मकान का एक हिस्सा उठा दिया। हाँ, सूरदास ने किसी को नहीं टिकाया। वह अपने नये मकान में, जो इंदुरानी के गुप्त दान से बना था, सुभागी के साथ रहता था। सुभागी अभी तक भैरों के साथ रहने पर राज़ी न हुई थी। हाँ, भैरों की आमद-रफ़्त अब सूरदास के घर अधिक रहती थी।

कारखाने में अभी मशीनें न गड़ी थीं, पर उसका फैलाव दिन-दिन बढ़ता जाता था। सूरदास की बाकी पाँच बीघे जमीन भी उसी धारा के अनुसार मिल के अधिकार में आ गई। सूरदास ने सुना, तो हाथ मलकर रह गया। पछताने लगा कि जॉन साहब ही से क्यों न सौदा कर लिया! पाँच हज़ार देते थे। अब बहुत मिलेंगे, दो-चार सौ रुपये मिल जायेंगे। अब कोई आंदोलन करना उसे व्यर्थ मालूम होता था। जब पहले ही कुछ न कर सका, तो अब क्या कर लूँगा। पहले ही यह शंका थी, वह पूरी हो गई।

दोपहर का समय था। सूरदास एक पेड़ के नीचे बैठा झपकियाँ ले रहा था कि इतने में तहसील के एक चपरासी ने आकर उसे पुकारा और एक सरकारी परवाना दिया।

सूरदास समझ गया कि हो न हो, जमीन ही का कुछ झगड़ा है। परवाना लिए हुए मिल में आया कि किसी बाबू से पढ़वाये। मगर कचहरी की सुबोध लिपि बाबुओं से क्या चलती! कोई कुछ बता न सका। हारकर लौट रहा था कि प्रभु सेवक ने देख लिया। तुरंत अपने कमरे में बुला

लिया और परवाने को देखा। लिखा हुआ था– अपनी जमीन के एक हज़ार रुपये तहसील में आकर ले जाओ।

सूरदास – कुल एक हज़ार है?

प्रभु सेवक – हाँ, इतना ही तो लिखा है।

सूरदास – तो मैं रुपये लेने न जाऊँगा। साहब ने पाँच हज़ार देने को कहे थे, उनके एक हज़ार रहे, घूस-घास में सौ-पचास और उड़ जायेंगे। सरकार का खज़ाना खाली है, भर जायेगा।

प्रभु सेवक – रुपये न लोगे, तो जब्त हो जायेंगे। यहाँ तो सरकार इसी ताक में रहती है कि किसी तरह प्रजा का धन उड़ा ले। कुछ टैक्स के बहाने से, कुछ रोज़गार के बहाने से, कुछ किसी बहाने से हजम कर लेती है।

सूरदास – गरीबों की चीज़ है, तो बाज़ार-भाव से दाम देना चाहिए। एक तो जबरदस्ती जमीन ले ली, उस पर मनमाना दाम दे दिया। यह तो कोई न्याय नहीं है।

प्रभु सेवक – सरकार यहाँ न्याय करने नहीं आयी है भाई, राज्य करने आयी है। न्याय करने से उसे कुछ मिलता है? कोई समय वह था, जब न्याय को राज्य की बुनियाद समझा जाता था। अब वह ज़माना नहीं है। अब व्यापार का राज्य है, और जो इस राज्य को स्वीकार न करे, उसके लिए तारों का निशाना मारनेवाली तोपें हैं। तुम क्या कर सकते हो? दीवानी में मुकदमा दायर करोगे, वहाँ भी सरकार ही के नौकर-चाकर न्याय-पद पर बैठे हुए हैं।

सूरदास – मैं कुछ न लूँगा। जब राजा ही अधर्म करने लगा, तो प्रजा कहाँ तक जान बचाती फिरेगी?

प्रभु सेवक – इससे फ़ायदा क्या? एक हज़ार मिलते हैं, ले लो; भागते भूत की लंगोटी ही भली।

सहसा इंद्रदत्त आ पहुँचे और बोले– प्रभु, आज डेरा कूच है, राजपूताना जा रहा हूँ।

प्रभु सेवक – व्यर्थ जाते हो। एक तो ऐसी सख्त गरमी, दूसरे वहाँ की दशा अब बड़ी भयानक हो रही है। नाहक कहीं फँस-फँसा जाओगे।

इंद्रदत्त – बस, एक बार विनयसिंह से मिलना चाहता हूँ। मैं देखना चाहता हूँ कि उनके स्वभाव, चरित्र, आचार-विचार में इतना परिवर्तन, नहीं रूपांतर कैसे हो गया।

प्रभु सेवक – ज़रूर कोई-न-कोई रहस्य है। प्रलोभन में पड़ने वाला आदमी तो नहीं है। मैं तो उनका परम भक्त हूँ। अगर वह विचलित हुए, तो मैं समझ जाऊँगा कि धर्म-निष्ठा का संसार से लोप हो गया।

इंद्रदत्त – यह न कहो प्रभु, मानव-चरित्र बहुत ही दुर्बोध वस्तु है। मुझे तो विनय की कायापलट पर इतना क्रोध आता है कि पाऊँ, तो गोली मार दूँ। हाँ, संतोष इतना ही है कि उनके निकल जाने से इस संस्था पर कोई असर नहीं पड़ सकता। तुम्हें तो मालूम है, हम लोगों ने बंगाल में प्राणियों के उद्धार के लिए कितना भगीरथ प्रयत्न किया। कई-कई दिन तक हम लोगों को दाना तक न मयस्सर होता था।

सूरदास – भैया, कौन लोग इस भाँति गरीबों का पालन करते हैं?

इंद्रदत्त – अरे सूरदास! तुम यहाँ कोने में खड़े हो! मैंने तो तुम्हें देखा ही नहीं। कहो, सब कुशल है न?

सूरदास – सब भगवान की दया है। तुम अभी किन लोगों की बात कर रहे थे?

इंद्रदत्त – अपने ही साथियों की। कुँवर भरतसिंह ने कुछ जवान आदमियों को संगठित करके एक संगत बना दी है। उसके खर्च के लिए थोड़ी-सी जमीन भी दान कर दी है। आजकल हम लोग कई सौ आदमी हैं। देश की यथाशक्ति सेवा करना ही हमारा परम धर्म और व्रत है। इस वक्त हममें से कुछ लोग तो राजपूताना गए हुए हैं और कुछ लोग पंजाब गए हुए हैं, जहाँ सरकारी फौज ने प्रजा पर गोलियाँ चला दी हैं।

सूरदास – भैया, यह तो बड़े पुन्न का काम है। ऐसे महात्मा लोगों के तो दरसन करने चाहिए। तो भैया, तुम लोग चंदे भी उगाहते होगे?

इंद्रदत्त – हाँ, जिसकी इच्छा होती है, चंदा भी दे देता है; लेकिन हम लोग खुद नहीं माँगते फिरते।

सूरदास – मैं आप लोगों के साथ चलूँ, तो आप मुझे रखेंगे? यहाँ पड़े-पड़े अपना पेट पालता हूँ, आपके साथ रहूँगा, तो आदमी हो जाऊँगा।

इंद्रदत्त ने प्रभु सेवक से अंग्रेज़ी में कहा– कितना भोला आदमी है। सेवा और त्याग की सदेह मूर्ति होने पर भी गरूर छू तक नहीं गया, अपने सत्कार्य का कुछ मूल्य नहीं समझता। परोपकार इसके लिए कोई इच्छित कर्म नहीं रहा, इसके चरित्र में मिल गया है।

सूरदास ने फिर कहा– और कुछ तो न कर सकूँगा, अपढ़, गँवार ठहरा। हाँ, जिसके सरहाने बैठा दीजियेगा, पंखा झलता रहूँगा; पीठ पर जो कुछ लाद दीजियेगा, लिए फिरूँगा।

इंद्रदत्त – तुम सामान्य रीति से जो कुछ करते हो, वह उससे कहीं बढ़कर है जो हम लोग कभी-कभी विशेष अवसरों पर करते हैं। दुश्मन के साथ नेकी करना रोगियों की सेवा से छोटा काम नहीं है।

सूरदास का मुख-मंडल खिल उठा, जैसे किसी कवि ने किसी रसिक से दाद पायी हो। बोला– भैया, हमारी क्या बात चलाते हो! जो आदमी पेट पालने के लिए भीख माँगेगा, वह पुन्न-धरम क्या करेगा! बुरा न मानो, तो एक बात कहूँ। छोटा मुँह बड़ी बात है; लेकिन आपका हुकुम हो, तो मुझे मुआवज़े के जो रुपये मिले हैं, उन्हें आपकी संगत की भेंट कर दूँ।

इंद्रदत्त – कैसे रुपये?

प्रभु सेवक – इसकी कथा बड़ी लंबी है। बस, इतना ही समझ लो कि पापा ने राजा महेंद्रकुमार की सहायता से इसकी जो जमीन ले ली थी, उसका एक हज़ार

रुपया इसे मुआवज़ा दिया गया है। यह मिल उसी लूट के माल पर बन रही है।

इंद्रदत्त – तुमने अपने पापा को मना नहीं किया?

प्रभु सेवक – खुदा की कसम, मैं और सोफी, दोनों ही ने पापा को बहुत रोका, पर तुम उनकी आदत जानते ही हो, कोई धुन सवार हो जाती है, तो किसी की नहीं सुनते।

इंद्रदत्त – मैं तो अपने बाप से लड़ जाता, मिल बनती या भाड़ में जाती! ऐसी दशा में तुम्हारा कम-से-कम यह कर्तव्य था कि मिल से बिलकुल अलग रहते। बाप की आज्ञा मानना पुत्र का धर्म है, यह मैं मानता हूँ; लेकिन जब बाप अन्याय करने लगे, तो लड़का उसका अनुगामी बनने के लिए बाध्य नहीं। तुम्हारी रचनाओं में तो एक-एक शब्द से नैतिक विकास टपकता है, ऐसी उड़ान भरते हो कि हरिश्चंद्र और हुसेन भी मात हो जायें; मगर मालूम होता है, तुम्हारी समस्त शक्ति शब्द योजना ही में उड़ जाती है, क्रियाशीलता के लिए कुछ बाकी नहीं बचता। यथार्थ तो यह है कि तुम अपनी रचनाओं की गर्द को भी नहीं पहुँचते। बस, जबान के शेर हो। सूरदास, हम लोग तुम जैसे गरीबों से चंदा नहीं लेते। हमारे दाता धनी लोग हैं।

सूरदास – भैया, तुम न लोगे, तो कोई चोर ले जायेगा। मेरे पास रुपयों का काम ही क्या है। तुम्हारी दया से पेट-भर अन्न मिल ही जाता है, रहने के लिए झोंपड़ी बन ही गई है, और क्या चाहिए। किसी अच्छे काम में लग जाना इससे कहीं अच्छा है कि चोर उठा ले जायें। मेरे ऊपर इतनी दया करो।

इंद्रदत्त – अगर देना ही चाहते हो, तो कोई कुआँ खुदवा दो। बहुत दिनों तक तुम्हारा नाम रहेगा।

सूरदास – भैया, मुझे नाम की भूख नहीं है। बहाने मत करो, ये रुपये लेकर अपनी संगत में दे दो। मेरे सिर से बोझ टल जायेगा।

प्रभु सेवक – (अंग्रेज़ी में) मित्र, इसके रुपये ले लो, नहीं तो इसे चैन न आयेगा। इस दयाशीलता को देवोपम कहना उसका अपमान करना है। मेरी तो कल्पना भी वहाँ तक नहीं पहुँच सकती। ऐसे-ऐसे मनुष्य भी संसार में पड़े हुए हैं। एक हम हैं कि अपने भरे हुए थाल में से एक टुकड़ा उठाकर फेंक देते हैं, तो दूसरे दिन पत्रों में अपना नाम देखने को दौड़ते हैं। संपादक अगर उस समाचार को मोटे अक्षरों में प्रकाशित न करे, तो उसे गोली मार दें। पवित्र आत्मा है!

इंद्रदत्त – सूरदास, अगर तुम्हारी यही इच्छा है, तो मैं रुपये ले लूँगा, लेकिन इस शर्त पर कि तुम्हें जब कोई ज़रूरत हो, हमें तुरंत सूचना देना। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि शीघ्र ही तुम्हारी कुटी भक्तों का तीर्थ बन जायेगी और लोग तुम्हारे दर्शनों को आया करेंगे।

सूरदास – तो मैं आज रुपये लाऊँगा।

इंद्रदत्त – अकेले न जाना, नहीं तो कचहरी के कुत्ते तुम्हें बहुत दिक करेंगे। मैं तुम्हारे साथ चलूँगा।

सूरदास – अब एक अर्ज आपसे भी है, साहब! आप पुतलीघर के मजूरों के लिए घर क्यों नहीं बनवा देते? वे सारी बस्ती में फैले हुए हैं और रोज़ उधम मचाते रहते हैं। हमारे मुहल्ले में किसी ने औरतों को नहीं छेड़ा था, न कभी इतनी चोरियाँ हुईं, न कभी इतने धड़ल्ले से जुआ हुआ, न शराबियों का ऐसा हुल्लड़ रहा। जब तक मज़दूर लोग वहाँ काम पर नहीं आ जायें, औरतें घरों से पानी भरने नहीं निकलतीं। रात को इतना हुल्लड़ होता है कि नींद नहीं आती। किसी को समझाने जाओ, तो लड़ने पर उतारू हो जाता है।

यह कहकर सूरदास चुप हो गया और सोचने लगा, मैंने बात बहुत बढ़ाकर तो नहीं कही! इंद्रदत्त ने प्रभु सेवक को तिरस्कारपूर्ण लोचनों से देखकर कहा– भाई, यह तो अच्छी बात नहीं। अपने पापा से कहो, इसका जल्दी प्रबंध करें। न जाने, तुम्हारे वे सब सिद्धांत क्या हो गए। बैठे-बैठे यह सारा माज़रा देख रहे हो और कुछ करते-धरते नहीं।

प्रभु सेवक – मुझे तो सिरे से इस काम से घृणा है, मैं न इसे पसंद करता हूँ और न इसके योग्य हूँ। मेरे जीवन का सुख-स्वर्ग तो यही है कि किसी पहाड़ी के दामन में एक जलधारा के तट पर, छोटी-सी झोंपड़ी बनाकर पड़ा रहूँ। न लोक की चिंता हो, न परलोक की। न अपने नाम को कोई रोनेवाला हो, न हँसनेवाला। यही मेरे जीवन का उच्चतम आदर्श है। पर उस आदर्श को प्राप्त करने के लिए जिस संयम और उद्योग की ज़रूरत है, उससे वंचित हूँ। खैर, सच्ची बात तो यह है कि इस तरफ मेरा ध्यान ही नहीं गया। मेरा तो यहाँ आना न आना, दोनों बराबर है। केवल पापा के लिहाज से चला आता हूँ। अधिकांश समय यही सोचने में काटता हूँ कि क्योंकर इस कैद से रिहाई पाऊँ। आज ही पापा से कहूँगा।

इंद्रदत्त – हाँ, आज ही कहना। तुम्हें संकोच हो, तो मैं कह दूँ?

प्रभु सेवक – नहीं जी, इसमें क्या संकोच है। इससे तो मेरा रंग और जम जायेगा। पापा को ख्याल होगा, अब इसका मन लगने लगा, कुछ इसने कहा तो! उन्हें तो मुझसे यही रोना है कि मैं किसी बात में बोलता ही नहीं।

इंद्रदत्त यहाँ से चले तो सूरदास बहुत दूर तक उनके साथ सेवा-समिति की बातें पूछता हुआ चला आया। जब इंद्रदत्त ने बहुत आग्रह किया, तो लौटा। इंद्रदत्त वहीं सड़क पर खड़ा उस दुर्बल, दीन प्राणी को हवा के झोंके से लड़खड़ाते वृक्षों की छाँह में विलीन होते देखता रहा। शायद यह निश्चय करना चाहता था कि वह कोई देवता है या मनुष्य!

तितली

जयशंकर प्रसाद

'शिक्षा', 'सफ़ाई' और 'सेवा' गाँधीजी के जीवन-दर्शन के मूल सिद्धांत हैं। गाँधीजी ने शिक्षित तथा स्वावलंबी भारत का स्वप्न देखा था।

'तितली' उपन्यास सहजभाव से संपत्ति तथा अधिकारों को त्याग कर शिक्षा, ग्राम सुधार तथा जन-सुधार के कार्यक्रमों के संचालन का सुंदर दृश्य उपस्थित करता है। सभी महत्वपूर्ण पात्र धीरे-धीरे अपने स्वार्थपूर्ण जीवन को त्यागकर देश-सेवा तथा सुधार के लिए अत्यंत मनोयोग से जुट जाते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि स्त्रियाँ इस महत्वपूर्ण कार्य में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती हैं। कथा नायिका तितली का जीवन चरित्र इस रूप से अत्यंत प्रेरणास्पद है।

उपन्यास-अंश में बैरिस्टर मिस्टर देवा उर्फ़ जमींदार इंद्रदेव का सर्वस्व दान, शैला की ग्राम सुधार के लिए सक्रियता तथा तितली का सभी गहने-जेवर बेचकर खेती और पाठशाला चलाने का निर्णय एक तरह से गाँधीजी के नये भारत के निर्माण के सपने को सच होते हुए चित्रित करता है।

बरना के उत्तरी तट पर, सुंदर वृक्षों से घिरा हुआ एक छोटा-सा बंगला है। वहाँ पर आस-पास में ऐसी बहुत-सी कोठियाँ हैं जिनमें सरकारी उच्च कर्मचारी रहते हैं। बैरिस्टर, वकील और डॉक्टर जैसे स्वतंत्र व्यवसायी अपने सुखी परिवार को लेकर नगर से बाहर और अधिकारियों के समीप रहना अधिक पसंद करते हैं। इसी स्थान पर बाबू मुकुंदलाल भी रहते हैं। उनके पास तीन छोटे-बड़े बंगले हैं जिनमें से एक में तो वह स्वयं रहते हैं और बाकी दोनों के किराये से उनकी गृहस्थी का सारा खर्च चलता है। दोनों का भाड़ा 200 रुपया मिलता है। परंतु मुकुंदलाल का तो उतना बाहरी खर्च है। गृहस्थी का आवश्यक व्यय तो कर्ज के बल पर चल रहा है। आज से नहीं, कई बरस से।

नंदरानी चुपचाप अपने बंगले से सटकर बहती हुई बरना की क्षीण धारा को देख रही है। उसके सुंदर मुख पर तृप्ति से भरी हुई निराशा थी। तृप्ति इसलिए कि उसका कोई उपाय न था और निराशा तो थी ही, उसका भविष्य अंधकारपूर्ण था। संतान कोई नहीं। पति निश्चिंत भाग्यवादी कुलीन निर्धन, जिसके मस्तिष्क में भूतकाल की विभव-लीली स्वप्न-चित्र बनानी रहती है।

कत्थई रंग की ऊनी चादर, जिसे वह कंधों से लपेटे थी, खिसककर गिर रही थी। किंतु वह तल्लीन होकर बरना की अभावमयी धारा को देख रही थी और उसका समय भी वैसा ढल रहा था जैसा गोधूलि से मलिन दिन।

दो वृक्षों की ऊँची चोटियाँ पश्चिम के धुँधले और पीले आकाश की भूमिका पर एक उदास चित्र का अंश बना रही थीं। उसके पैरों के समीप बड़ी मटर और शलजम की छोटी-सी हरियाली थी, किंतु नंदरानी बरना के ढालुए करारे पर दृष्टि गड़ाये थी, इंद्रदेव का आना उसे मालूम नहीं हुआ।

इंद्रदेव ने 'भाभी' कहकर उसे चौंका दिया। वह कपड़े को संभालती हुई घूम पड़ी। इंद्रदेव ने कहा, "आज मेरे यहाँ कुछ लोग बाहर के आ गये हैं। उनके लिए थोड़ी-सी मटर चाहिए।"

"और बनावेगा कौन? यही आपका मिसिर न! रानी ने मुस्कराते हुए कहा।"

"तो फिर दूसरा कौन है?" हताश होकर इंद्रदेव ने उत्तर दिया।

"सुनूँ भी, कौन आये हैं? कितने हैं, कैसे हैं?"

"मिस शैला का नाम तो आपने सुना होगा?" संकोच से इंद्रदेव ने कहा।

'ओहो! यह तो मुझे मालूम ही नहीं! तब तुम लोगों को आज यहीं ब्यालू करना पड़ेगा। मैं अपने मटर की बदनामी कराने के लिए तुम्हारे मिसिर को उसे जलाने न दूँगी। मिस साहिबा किस समय भोजन करती हैं? अभी तो घंटे-भर का समय होगा ही।'

इंद्रदेव भीतर के मन से तो यही चाहते थे। पर उन्होंने, "उनको यहाँ..."

"मैं समझ गई! चलो, तुम्हारे साथ चलकर उन्हें बुला लाती हूँ। भला मुझे आज तुम्हारी मिस शैला की..." कहकर नंदरानी ने परिहासपूर्ण मौन धारण कर लिया।

इंद्रदेव नंदरानी के बहुत आभारी और साथ ही भक्त भी थे। उसकी गरिमा का बोझ इंद्रदेव को सदैव ही नतमस्तक कर देता। गुरुजनोचित स्नेह की आभा से नंदरानी उन्हें आप्लावित किया ही करती हैं।

"भाभी।" कहकर वह चुप रह गये।

"क्यों, क्या मेरे चलने से उसका अपमान होगा। एक दिन तो वही मेरी देवरानी होने वाली है, क्या यह बात मैंने झूठ सुनी है?"

वास्तविक बात तो यह थी कि इंद्रदेव शैला के आ जाने से बड़े असमंजस में पड़ गये थे, उनकी भी इच्छा थी कि नंदरानी से उसका परिचय कराकर वह छुट्टी पा जायें। उन्होंने कहा, "वाह भाभी, आप भी..."

"अच्छा-अच्छा, चलो। मैं सब जानती हूँ।" कहती हुई नंदरानी बगल के बंगले की ओर चली। इंद्रदेव पीछे-पीछे थे।

छोटे-से बंगले के एक सुंदर कमरे के बाहर दालान में आरामकुर्सी पर बैठी हुई शैला तन्मय होकर हिमालय के रमणीय दृश्य वाला चित्र देख रही थी। सहसा इंद्रदेव ने कहा, "मिस शैला! मेरी भाभी श्रीमती नंदरानी।"

शैला उठ खड़ी हुई। उसने सलज्ज मुस्कान के साथ नंदरानी को नमस्कार किया।

नंदरानी उसके व्यवहार को देखकर गद्‌गद् हो गई। उसने शैला का हाथ पकड़कर बैठाते हुए कहा, "बैठिये, इतने शिष्टाचार की आवश्यकता नहीं।"

नंदरानी और इंद्रदेव दोनों ही कुर्सी खींचकर बैठ गये! तीनों चुप थे।

नंदरानी ने कहा, "आज आपको मेरा निमंत्रण स्वीकार करना होगा। देखिए, बिना कुछ पूर्व-परिचय के मेरा ऐसा करना चाहे आपको अच्छा न लगे, किंतु मेरा इंद्रदेव पर इतना अधिकार अवश्य है और मैं शीघ्रता में भी हूँ। मुझे ही सब प्रबंध करना है। इसलिए मैं अभी तो छुट्टी माँगकर जा रही हूँ। वहीं पर बातें होंगी।"

शैला को कुछ कहने का अवसर दिये बिना ही वह उठ खड़ी हुई। शैला ने इंद्रदेव की ओर जिज्ञासा-भरी दृष्टि से देखा।

नंदरानी ने हँसकर कहा, "इन्हें भी वहीं ब्यालू करना होगा।"

शैला ने सिर झुकाकर कहा, "जैसी आपकी आज्ञा।"

नंदरानी चली गई। शैला अभी कुछ सोच रही थी कि मिसिर ने आकर पूछा, "ब्यालू के लिए..."

उसकी बात काटते हुए इंद्रदेव ने कहा, "हम लोग आज बड़े बंगले में ब्यालू करेंगे। वहाँ, घीसू से कह दो कि मेरे बगल वाले कमरे में मेम साहब के लिए पलंग लगा दे।"

मिसिर के जाने पर शैला ने कहा, "मैं तो कोठी पर चली जाऊँगी। यहाँ झंझट बढ़ाने से क्या काम है। मुझे तो यहाँ आये दो सप्ताह से अधिक हो गया। वहाँ तो मुझे कोई असुविधा नहीं है।"

इंद्रदेव ने सिर झुका लिया। क्षोभ से उनका हृदय भर उठा। वह कुछ कड़ा उत्तर देना चाहते थे। परंतु संभलकर कहा, "हाँ शैला! तुमको मेरी असुविधा का बहुत ध्यान रहता है। तुमने ठीक ही समझा है कि यहाँ ठहरने में दोनों को कष्ट होगा।"

किंतु यह व्यंग्य शैला के लिए अधिक हो गया। इंद्रदेव को वह मना लेने आयी थी। वह इसी शहर में रहने पर भी आज कितने दिनों पर उनसे भेंट करने आयी, इस बात का क्या इंद्रदेव को दुख न होगा? आने पर भी वह यहाँ रहना नहीं चाहती। इंद्रदेव ने अपने मन में यही समझा होगा कि वह अपने सुख को देखती है। शैला ने हाथ जोड़कर कहा, "क्षमा करो इंद्रदेव! मैंने भूल की है।"

"भूल क्या? मैं तो कुछ न समझ सका।"

"मैंने अपराध किया है। मुझे सीधे यहीं आना चाहिए था। किंतु क्या करूँ, रानी साहिबा ने मुझे वहीं रोक लिया। उन्होंने बीबी-रानी के नाम अपनी जमींदारी लिख दी है। उसी के लिखाने-पढ़ाने में लगी रही। और मैंने उसके लिए आकर तुम्हारी सम्मति नहीं ली, ऐसा मुझे न करना चाहिए था।"

“मैं तो समझता हूँ कि तुमने कुछ भूल नहीं की। मुझे उसके संबंध में कुछ कहना नहीं था। हाँ, यह बात दूसरी है कि तुम यहाँ क्यों नहीं आ गई। उसे लिखाते-पढ़ाते रहने पर भी तुम एक बार यहाँ आ सकती थी। किंतु तुमने सोचा होगा कि इंद्रदेव स्वयं अपने लिए तंग होगा, मैं वहाँ चलकर उसे और कष्ट दूँगी। यही न? तो ठीक तो है। अभी मेरी बैरिस्टरी अच्छी तरह नहीं चलती, तो भी इन कई महीनों में सादगी से जीवन-निर्वाह करने के लिए मैं रुपये जुटा लेता हूँ। मुझे संपत्ति की आवश्यकता नहीं शैला!”

शैला ने देखा, इंद्रदेव के मुँह पर दृढ़ उदासीनता है। वह मन-ही-मन काँप उठी। उसने सोचा कि इंद्रदेव को आर्थिक हानि पहुँचाने में मेरा भी हाथ है। वह कुछ कहना ही चाहती थी कि इंद्रदेव बीच में ही उसे रोककर कहने लगे, “मैं संकुचित हो रहा था। मुझे यह कहकर माँ का जी दुखाने में भय होता था कि मैं संपत्ति और जमींदारी से कुछ संसर्ग न रखूँगा। अच्छा हुआ कि उन्हीं लोगों ने इसका आरंभ किया है। तुमको अब यहाँ कुछ दिनों तक और ठहरना होगा, क्योंकि नियमपूर्वक लिखा-पढ़ी करके मैं समस्त अधिकार और अपनी संपत्ति माँ को दे देना चाहता हूँ। मेरे परम आदर की वस्तु ‘माँ का स्नेह’, जिसे पाकर खोया जा सके, वह संपत्ति मुझे न चाहिए। और मैं उसे लेकर भी क्या करूँगा? अधिक धन तो पारस्परिक बंधन में रहने वाले को…”

शैला चौंककर बोल उठी, “तो क्या तुम संन्यासी होना चाहते हो? इंद्रदेव! अंत में क्या यह कलंक भी मुझको मिलेगा?”

इंद्रदेव इस अप्रिय प्रसंग से ऊब उठे थे। इसे बंद करने के लिए कहा, “अच्छा, इस पर फिर बातें होंगी। अभी तो चलो, वह देखो, भाभी का नौकर बुलाने के लिए आ रहा होगा। जाओ, कपड़ा बदलना हो तो बदलकर झटपट तैयार हो लो।”

शैला हँस पड़ी। उसने पूछा, “तो क्या यहाँ किसी की साड़ियाँ भी मिल जायेंगी? मुझे तो तुम्हारी गृहस्थ-बुद्धि पर इतना भरोसा नहीं।”

इंद्रदेव लज्जित-से खीझ उठे। शैला हाथ-मुँह धोने के लिए चली गई।

इंद्रदेव क्रमश: उस घने होते हुए अंधकार में निश्चेष्ट बैठे रहे। शैला भी आकर पास ही कुर्सी पर बैठकर तितली की छोटी-सी सुंदर गृहस्थी का काल्पनिक चित्र खींच रही थी कि दासी लालटेन लेकर शैला को बुलाने के लिए ही आयी।

इंद्रदेव ने कहा, “चलो शैला!”

दोनों चुपचाप नंदरानी के बंगले में पहुँचे। दालान में कंबल बिछा था। मुकुंदलाल कंबल के एक सिरे पर बैठे हुए छोटी-सी सितारी पर ईमन का मधुर राग छेड़ रहे थे। दमचूल्हे पर मटर हो रही थी। उसके नीचे लाल अंगारों का आलोक फैल रहा था। लालटेन आड़ में कर दी गई थी, बाबू मुकुंदलाल को उसका प्रकाश अच्छा नहीं लगता।

नंदरानी उस क्षीण आलोक में थाली सजा रही थी। सरूप नि:शब्द काम करने में चतुर था। वह नंदरानी के संकेत से सब आवश्यक वस्तु भंडार में से लाकर जुटा रहा था।

शैला और इंद्रदेव को देखते ही मुकुंदलाल ने सितारी रखकर उनका स्वागत किया। शैला ने नमस्कार किया। सब लोग कंबल पर बैठे। नंदरानी ने थाली लाकर रख दी। इंद्रदेव ने शैला का परिचय देते हुए यह भी कहा कि, "आप हिंदू धर्म में दीक्षित हो चुकी हैं। आपने धामपुर में गाँव के किसानों की सेवा करना अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया है।"

नंदरानी विस्मित होकर शैला के मौन गौरव को देख रही थी। किंतु मुकुंदलाल का ललाट रेखारहित और उज्ज्वल बना रहा। जैसे उनके लिए यह कोई विशेष ध्यान देने की बात न थी। उन्होंने मटर का एक पूरा ग्रास गले से उतारते हुए कहा, "भाई इंद्रदेव, तुम जो कह रहे हो, उसे सुनकर मिस शैला की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। यह भी एक तरह का संन्यास धर्म है! किंतु मैं तो गृहस्थ नारी की मंगलमयी कृति का भक्त हूँ। वह इस साधारण संन्यास से भी दुष्कर और दंभविहीन उपासना है।"

नंदरानी ने कुछ सजग होकर अपने पति की वह बात सुनी। उसके अधर कुछ खिल उठे। उसने कहा, "इंद्रदेव जी, और क्या दूँ?"

मुकुंदलाल ने थोड़ा-सा हँसकर कहा, "अपनी-सी एक सुंदर सह-धर्मिणी।"

शैला के कर्णमूल लाल हो उठे। और इंद्रदेव ने बात टालते हुए कहा, "मैं समझता हूँ कि भाभी जानती होंगी कि इस अपने पेट के लिए जुटाने वाले मनुष्य को, उनकी-सी स्त्री की आवश्यकता नहीं हो सकती।"

शैला और भी कटी जा रही थी। उसको इंद्रदेव की सब बातें निराश हृदय की संतोष-भरी साँस-सी मालूम होती थीं। वह देख रही थी नंदरानी को और तुलना कर रही थी तितली से। एक की भरी-पूरी गृहस्थी थी और दूसरी अभाव से अकिंचन; तिस पर भी दोनों परिवार सुखी और वास्तविक जीवन व्यतीत कर रहे थे।

नंदरानी ने कहा, "इतना पेटू हो जाना भी अच्छा नहीं होता इंद्रदेव! अपना ही स्वार्थ न देखना चाहिए।"

"कहाँ भाभी? मैंने तो अभी कुछ भी नहीं खाया। अभी मिठाइयाँ तो बाकी ही हैं। तिस पर भी मैं पेटू कहा जाऊँ। आश्चर्य!"

"अरे राम! मैं खाने के लिए थोड़े ही कह रही हूँ। अभी तो तुमने कुछ खाया ही नहीं! मेरा तात्पर्य था तुम्हारे ब्याह से।"

"ओहो! तो मैं देखता हूँ कि कोई मूर्ख कुमारी मुझसे ब्याह करने की भीख माँगने के लिए तुम्हारे पास पल्ला पसारकर आयी थी न। उसको समझा दो भाभी! मैं तो उसके लिए कुछ न कर सकूँगा।"

नंदरानी हँसने लगी। शैला से उसने पूछा, "क्यों, आप तो कुछ...?"

“जी नहीं, मुझे कुछ न चाहिए!”– कहकर शैला ने उसकी ओर दीनता से देखा।

मुकुंदलाल ने इंद्रदेव से कहा, “तुम ठीक कहते हो इंद्रदेव, मैं भूल पर रहा। स्त्री के लिए पर्याप्त रुपया या संपत्ति की आवश्यकता है! पुरुष उसे घर में लाकर जब डाल देता है, तब उसकी निज की आवश्यकताओं पर बहुत कम ध्यान देता है। इसलिए मेरा भी अब यही मत हो गया है कि स्त्री के लिए सुरक्षित धन की व्यवस्था की जानी चाहिए! नहीं तो तुम्हारी भाभी की तरह वह स्त्री अपने पति को दिन-रात चुपचाप कोसती रहेगी।”

नंदरानी अप्रतिभ-सी होकर बोली, “यह लो, अब मुझी पर बरस पड़े।”

मुकुंदलाल ने और भी गंभीर होकर कहा, “अच्छा इंद्रदेव! तुमसे एक बात कहूँ? मिस शैला के सामने भी वह बात कहने में मुझे संकोच नहीं। यह तो तुम जानते हो कि मैं धीरे-धीरे ऋण में डूब रहा हूँ। और जीवन के भोग के प्याले को, उसका सुख बढ़ाने के लिए, बहुत धीरे-धीरे दस-दस, बीस-बीस बूँद का घूँट लेकर खाली कर रहा हूँ। होगा सो तो होकर ही रहेगा। किंतु तुम्हारी भाभी क्या करेगी। मैं चाहता हूँ कि ये दोनों छोटे बंगले मैं नंदरानी के नाम लिख दूँ। और फिर एक बार विस्मृति की लहर में धीरे-धीरे डूबूँ और उतराऊँ।”

नंदरानी की आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। न जाने कितनी अमंगल और मंगल की कोमल भावनाएँ संसार के कोने-कोने से खिल-खिला पड़ीं। उसने मुकुंदलाल का प्रतिवाद करना चाहा, परंतु नारी-जीवन का कैसा गूढ़ रहस्य है कि वह स्पष्ट विरोध न कर सकी। इतने में इंद्रदेव ने कहा, “भाई साहब मुझे एक रजिस्ट्री करानी है! मैं अपनी समस्त संपत्ति माँ के नाम लिख देना चाहता हूँ। क्योंकि...”

शैला ने तौलिये से हाथ पोंछते हुए इंद्रदेव की ओर देखा। उसने अभी-अभी इंद्रदेव के अभावों का दृश्य देखा है। उसने संपत्ति से और उसकी आशा से भी वंचित होने की मन में ठानी है।

मुकुंदलाल ने कहा, “हाँ, हाँ, करो, क्योंकि स्त्रियों को ही धन की आवश्यकता है। और संभवत: वे ही इसकी रक्षा भी कर सकती हैं। तो फिर ठीक रहा। कल ही इसका प्रबंध कर दो।”

सब लोग हाथ-मुँह धोकर अपनी कुर्सियों पर आराम से बैठे ही थे कि सरूप ने आकर कहा, “बैरिस्टर साहब से मिलने के लिए एक स्त्री आयी है। उसका कोई मुकदमा है।”

सब लोग चुप रहे। शैला सोच रही थी कि क्या स्त्रियाँ सचमुच धन की लोलुप हैं। फिर उसने अपने ही उत्तर दिया, “नहीं, समाज का संगठन ही ऐसा है कि प्रत्येक प्राणी को धन की आवश्यकता है। इधर स्त्री को स्वावलंबन से जब पुरुष लोग हटाकर, उसके भाव और अभाव का दायित्व अपने हाथ में ले लेते हैं, तब धन को छोड़कर दूसरा उनका क्या सहारा है?”

इतने में सरूप कमरे में गरम चाय की प्याली सजाने लगा।

नंदरानी भोजन करने बैठी। उससे खाया न गया!

दालान में परदे गिरा दिये गये थे। ठंडी हवा चलने लगी थी। किंतु नंदरानी झटपट हाथ-मुँह धोकर पान मुख में रखकर वहीं एक आराम-कुर्सी पर अपनी ऊनी चादर में लिपटी हुई पड़ी रही; उसके मन में संकल्प-विकल्प चल रहा था। आज तक का उसका त्याग, कुछ मूल्य पर बिकने जा रहा है। उसका मन यह मूल्य लेने से विद्रोह कर रहा था। तब भी जीवन के कितने निराशा भरे दिन काटने होंगे। ज्योतिषी ने कह दिया है कि बाबू मुकुंदलाल अब अधिक दिन जीने के नहीं हैं— उनका भीतरी शरीर भग्न पोत की तरह काल-समुद्र में धीरे-धीरे धँसता जा रहा है, फिर भी उस ऊर्जस्वित आत्मा का केतु अभी डुबा देने वाले जल के ऊपर ही है। उनकी अवस्था पचास वर्ष की और नंदरानी की चालीस की है। किंतु संसार जैसे उनके सामने अंतिम घड़ियाँ गिन रहा है। गार्हस्थ्य जीवन के मंगलमय भविष्य में उनका विश्वास नहीं। उसमें रहते हुए पुराना संस्कार उन्हें थके हुए घोड़े के लिए टूटा हुआ छकड़ा बना रहा है, वह जैसे उसे घसीट रहे हैं।

किंतु मुकुंदलाल के लिए यह अवस्था तभी होती है जब वह नंदरानी को अपने जीवन के साथ मिलाकर देखते हैं। फिर जैसे अपने स्थान को लौटकर सितारी, मित्र वर्ग और उनके आतिथ्य-सत्कार में लग जाते हैं।

नंदरानी खिन्न होकर सो गई! उसने नहीं जाना कि कब शैला और इंद्रदेव दूसरी ओर चले गये।

मुकुंदलाल ने सोने के कमरे में जाते हुए देखा कि नंदरानी अभी वहीं पड़ी है। वह एक क्षण तक चुपचाप खड़े रहे। फिर दासी को बुलाकर धीरे से कहा, "कुछ और ओढ़ा दो। न जागें तो यहाँ आग भी सुलगा दो। देखो, परदे ठीक से बाँध देना। यहाँ गरम रहे, तुम्हारी मालकिन थक गई है।" फिर सोने चले गये।

दूसरे दिन, बरकत अली ने स्टाम्प इंद्रदेव के पास भेज दिया और बाहर मिलने की आशा में बैठा रहा। जब बारह बजने लगे, तब घबराकर कोठी के बाहर निकल आया और आम के पेड़ के नीचे बैठी हुई एक स्त्री से उसने कहा, "माँ जी! आज बैरिस्टर साहब एक काम में फँसे हुए हैं। आप जाइए, कल आपका काम हो जायेगा।"

वह सिर झुकाये हुए बोली, "कल कब आऊँ?'

"आठ बजे।"

"तब मैं जाती हूँ।" कहकर स्त्री धीरे से उठी और बंगले के बाहर हो गई।

अभी वह थोड़ी दूर सड़क पर पहुँची होगी कि उसी फाटक से एक मोटर उसके पीछे से निकली। उसका शब्द सुनकर, मोटर की ओर देखती हुई, वह एक ओर हटी और उसने पहचान लिया, इंद्रदेव और शैला। उसने साहस से पुकारा, "बहन शैला।"

किंतु शैला ने सुना नही। इंद्रदेव मोटर चला रहे थे। वह करुण पुकार दोनों के कान में नहीं पड़ी।

वह स्त्री धीरे-धीरे फाटक से लौट आयी और आम के नीचे जाकर बैठ रही।

शैला जब रजिस्ट्री पर गवाही करके इंद्रदेव के साथ उस बंगले पर लौटी, तो उसे न जाने क्यों मानसिक ग्लानि होने लगी। वह हाथ-मुँह पोंछकर बगीचे में घूमने के लिए चली। एक छोटा-सा चमेली का कुंज था। उसमें फूल नहीं थे। पत्तियाँ भी विरल हो चली थीं। वह रूखी-रूखी लता, लोहे के मोटे तारों से लिपट गई थी; तीव्र धूप में चाहे उसे कितना ही जलाता हो, फिर भी उसके लिए वही अवलंब था। किरणें उसमें सहज प्रवेश करके उसे हँसाने का उद्योग कर रही थीं। शैला उस निस्सहाय अवस्था को तल्लीन होकर देख रही थी।

सहसा तितली ने उसके सामने आकर पुकारा, "बहन! मैं कब से तुमको खोज रही हूँ। तुमको देखा और पुकारा भी, पर तुमने न सुना। सच है, संसार में सब मुँह मोड़ लेते हैं! विपत्ति में किससे आशा की जाये!"

शैला ने घूमकर देखा। यह वही तितली है? कई पखवारों में ही वह कितनी दुर्बल और रक्त-शून्य हो गई है। आँखें जैसे निराश नदी के उद्गम-सी बन गई हैं। बाहरी रूप-रेखा जैसे शून्य में विलीन होने वाले इंद्रधनुष-सी अपना वर्ण खो रही है। उसे अभी अपने मानसिक विप्लव से छुट्टी नहीं मिली थी। फिर भी उसने संभलते हुए पूछा, "तितली! क्या हुआ बहन! तुम यहाँ कैसे?"

"बड़े दु:ख में पड़कर मैं यहाँ आयी हूँ बहन! मैं लुट गई!" तितली की रूखी आँखों से आँसू निकल पड़े।

“क्यों, मधुबन कहाँ हैं?” सुनते ही शैला ने पूछा।

“पता नहीं। उस दिन गाँव में लाठी चली। रामजस को लोग मारने लगे। उन्होंने जाकर रामजस को बचाया, जिसमें छावनी के कई नौकर घायल हो गये। पुलिस की तहकीकात में सब लोगों ने उन्हीं के विरुद्ध गवाही दी। थानेदार ने रुपया माँगा? और मुकदमे के लिए भी रुपयों की आवश्यकता थी। महंत जी के पास उन्होंने राजो को भेजा। राजो कहती थी कि महंत ने उसके साथ अनुचित व्यवहार करना चाहा। इस पर वहीं छिपे हुए उन्होंने महंत का गला घोंट दिया। राजो तो चली आयी। पर उनका पता नहीं!”

“यहाँ तक! और जब लड़ाई हुई, तब तुमने मुझे क्यों नहीं कहला भेजा?” शैला ने पूछा।

परंतु तितली चुप रही। मैना के संबंध की बात, अपनी उदासी और राजो की सब कथा कहने के लिए जैसे उसके हृदय में साहस नहीं था।

“तब क्या किया जाये? उनका पता कैसे लगेगा बहन! इधर शेरकोट पर बेदखली हो गई है। और बनजरिया पर भी डिग्री हुई है, कोई रुपया देता नहीं। मुकदमा कैसे लड़ा जाये? मुझे कोई सहायता नहीं देना चाहता। मैं तो सब ओर से गई। यहाँ कई वकीलों के पास गई। वे कहते हैं, पहले रुपया ले आओ, तब तुम्हारी बात सुनेंगे। फिर एक सज्जन ने बताया कि यहीं कहीं मिस्टर देवा नाम के एक सज्जन बैरिस्टर रहते हैं। वे प्राय: दीन-दुखियों के मुकदमें बिना कुछ लिये लड़ देते हैं। मैं उन्हीं को खोजती हुई यहाँ तक पहुँची।”

शैला घबरा गई। वह अभी तो इंद्रदेव के सर्वस्व-त्याग करने का दृश्य देखकर आयी थी। उसके मन में रह-रहकर यही भावना हो रही थी कि यदि मैं इंद्रदेव को थोड़ा-सा भी विश्वास दिला सकती, तो उनके हृदय में यह भीषण विराग न उत्पन्न होता। वह फिर अपने को ही इंद्रदेव की सांसारिक असफलता मानती हुई मन-ही-मन कोस रही थी कि तितली का यह दुख से दग्ध संसार उसके सामने अनुनय की भीख माँगने के लिए खड़ा था। वह किस मुँह से इंद्रदेव से उसकी सहायता के लिए कहे। यदि नहीं कहती है तो अपनी सब दुर्बलताएँ तितली से स्वीकार करनी होंगी। जिसको हम प्यार करते हैं, जिसके ऊपर अभिमान करने का ढोंग कई बार संसार में प्रचलित कर चुके हैं, उसके लिए यह कहना कि “वह मुझसे अप्रसन्न हैं, मैं नहीं...” कितनी छोटी बात है! वह कैसे निराश करती। उसने तितली से कहा, “अच्छा, ठहरो। मैं आज इसका कोई उपाय करूँगी! तितली! क्या यह जानती हो कि यह मिस्टर देवा कोई दूसरे नहीं, तुम्हारे जमींदार इंद्रदेव ही हैं।”

तितली सन्न हो गई। उसने अपने चारों ओर निराशा के सिंधु को लहराते हुए देखा। वह रो पड़ी। और बोली, “बहन! तब मुझे छुट्टी दो। मैं जाऊँ, कहीं दूसरी शरण खोजूँ!”

प्यार से उसकी पीठ थपथपाते हुए शैला ने कहा, “नहीं, तुम दूसरी जगह न जाओ, मैं आज अपनी ही परीक्षा लूँगी। तुमको यह नहीं मालूम कि आज ही उन्होंने अपनी जमींदारी का स्वत्व त्याग दिया है।”

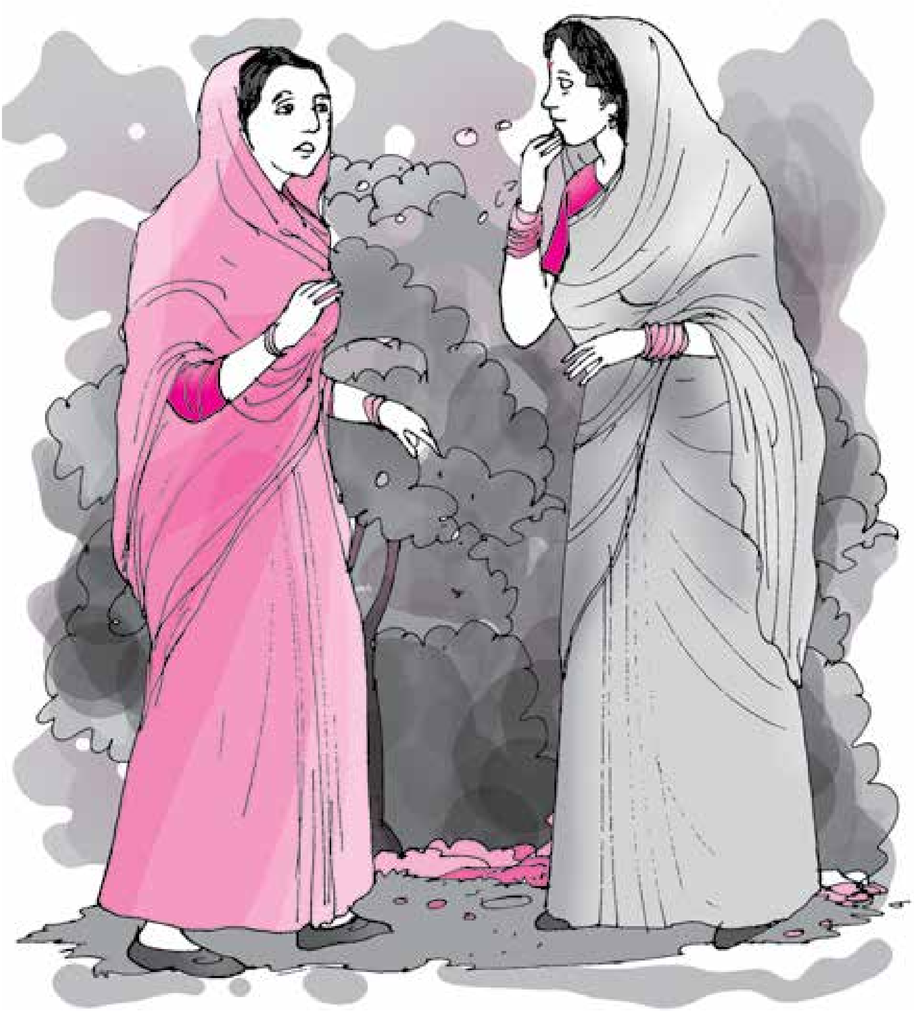

"क्या कहती हो बहन?"

"हाँ, तितली! इंद्रदेव ने अपने ऐश्वर्य का आवरण दूर फेंक दिया है। वह भी आज हमीं लोगों के-से श्रमजीवी-मात्र हैं। मुझे तुम्हारे लिए बहुत-कुछ करना होगा। गाँव का सुधार करने मैं गई थी। क्या एक कुटुंब की भी रक्षा न कर सकूँगी? चलो तुम मेरे कमरे में नहा-धोकर स्वस्थ हो जाओ। मैं इंद्रदेव से पूछकर तुमको बुलाती हूँ।"

इतना कहकर शैला ने तितली का हाथ पकड़कर उठाया और अपनी कोठरी में ले गई।

उधर इंद्रदेव चाय की टेबल पर बैठे हुए शैला की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनका हृदय हल्का हो रहा था। त्याग का अभिमान उनके मुँह पर झलक रहा था और उसमें छिपा था एक व्यंग्य भरा रूठने का प्रसंग। शैला भी क्या सोचेगी। मन में मनुष्य अपने त्याग से जब प्रेम को आभारी

बनाता है, तब उसका रिक्त कोश बरसे हुए बादलों पर पश्चिम के सूर्य के रत्नालोक के समान चमक उठता है। इंद्रदेव को आज आत्मविश्वास था और उसमें प्रगाढ़ प्रसन्नता थी।

शैला आयी और धीरे से एक कुर्सी खींचकर बैठ गई। दोनों ने चुपचाप चाय की प्याली खाली कर दी। फिर भी चुप! दोनों किसी प्रसंग की प्रतीक्षा में थे।

परंतु इंद्रदेव का हृदय तो स्पष्ट हो रहा था। उन्होंने चुप रहने की आवश्यकता न समझकर सीधा प्रश्न किया, "तो मैं समझता हूँ कि कल तुम धामपुर जाओगी? आज तो यहीं कोठी पर रुकना पड़ेगा! क्योंकि मैंने तुम्हारा अधूरा काम पूरा कर दिया है। उसे तो जाकर माँ से कहोगी ही। फिर समय कहाँ मिलेगा। कल सवेरे जाओगी। एँ!"

शैला मेज के फूलदान कपड़े पर छपे हुए गुलाब की पंखुरियाँ नोच रही थी। सिर नीचा था और आँखें डबडबा रही थीं। वह क्या बोले?

इंद्रदेव ने फिर कहा, "तो आज यहीं रहना होगा!"

"क्या तुम चाहते हो कि मैं अभी चली जाऊँ?" बड़े दुख से शैला ने उत्तर दिया।

"यह लो, मैं पूछ रहा हूँ। नहीं-नहीं— मैं तो तुम्हारी ही बात कर रहा हूँ। तुम तो उसी दिन चली जा रही थी। मैंने देखा कि तुम अपना काम अधूरा ही छोड़कर चली जा रही हो, इसीलिए रोक लिया था। अब तो मैं समझता हूँ कि तुम अपने ग्राम-सुधार की योजना अच्छी तरह चला लोगी। माँ को समझा देना कि जब इंद्रदेव को ही अपने लिए संपत्ति की आवश्यकता नहीं रही, तब उन्हें चाहिए कि यह संचित संपत्ति अधिक-से-अधिक दीन-दुखियों के उपकार में लगाकर पुण्य और यश की भागी बनें।"

"तो, तुम अब भी गाँव के सुधार में विश्वास रखते हो?"

"मेरे इस त्याग में इस विचार का भी एक अंश है शैला कि जब तक उस एकाधिपत्य से मैं अपने को मुक्त नहीं कर लेता, मेरी ममता उनके चारों ओर प्रेम की छाया की तरह घूमा करती। अब मेरा स्वार्थ उससे नहीं रहा। मैं तो समझता हूँ कि गाँवों का सुधार होना चाहिए। कुछ-पढ़े-लिखे संपन्न और स्वस्थ लोगों को नागरिकता के प्रलोभनों को छोड़कर देश के गाँवों में बिखर जाना चाहिए। उनके सरल जीवन में— जो नागरिकों के संसर्ग से विषाक्त हो रहा है— विश्वास, प्रकाश और आनंद का प्रचार करना चाहिए। उनके छोटे-छोटे उत्सवों में वास्तविकता, उनकी खेती में संपन्नता और चरित्र में सुरुचि उत्पन्न करके उनके दारिद्र्य और अभाव को दूर करने की चेष्टा होनी चाहिए। इसके लिए संपत्तिशालियों को स्वार्थ-त्याग करना अत्यंत आवश्यक है।"

"किंतु अधिकार रखते हुए तो उसे तुम और भी अच्छी तरह कर सकते थे। शक्ति-केंद्र यदि अधिकारों के संचय का सदुपयोग करता रहे, तो नियंत्रण भलीभाँति चल सकता है, नहीं

तो अव्यवस्था उत्पन्न होगी। तुम्हारे इस त्याग का अच्छा ही फल होगा, इसका क्या प्रमाण है? मैं तो समझती हूँ कि तुमने किसी झोंक में आकर यह कर डाला।''

शैला की यह बात सुनकर इंद्रदेव हँसने लगे। उस हँसी में अवहेलना भरी थी। फिर उन्होंने कहा– ''संसार के अच्छे-से-अच्छे नियम और सिद्धांत बनते और बिगड़ते रहेंगे। मैं सबको प्रसन्न और संतुष्ट रखने के लिए अपने आपको जकड़कर रखना नहीं चाहता। जो होना हो, वह हो ले। मैंने जो अच्छा समझा, वही किया। अच्छा, तो अब अपनी कहो। क्या निश्चय हुआ?''

''मैं कल जाना चाहती थी। पर अब तो कुछ दिनों के लिए रुकना पड़ा।''

''क्यों, कोई आवश्यक काम आ पड़ा क्या?''

''हाँ, पहले मैं तुम्हारे त्याग की परीक्षा करूँगी, फिर दूसरे के किवाड़ खटखटाऊँगी।''

''शैला! सुनूँ भी। मुझे क्या परीक्षा देनी है?''

''तितली बड़ी विपत्ति में पड़कर सहायता के लिए आयी है। उसका शेरकोट बेदखल हो रहा है। बनजरिया पर भी लगान की डिग्री हो गई है। उधर आपके तहसीलदार ने एक फौजदारी करवा दी है, जिसमें मधुबन पर पुलिस ने वारंट निकलवाया है। और भी, बिहारी जी के महंत ने डाके का मुकदमा भी उस पर चलाया है। मधुबन का पता नहीं। तितली का कोई सहायक नहीं। उसके ब्याह के बाद ही गाँव वालों का एक विरोधी दल इन लोगों के विनाश का उपाय सोच रहा था। हम लोगों के हटते ही यह सब हो गया। क्या उसको तुम कानूनी सहायता दे सकोगे?''

एक साँस में यह सब कहकर शैला उत्सुकता से उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी। इंद्रदेव चुप रहे। फिर धीरे-धीरे उन्होंने कहा, ''मैं अब इस गाँव के संबंध में कुछ करना नहीं चाहता! शैला! तुम जानती हो कि इसका क्या फल होगा?''

''मैं सब जानती हूँ। पर तुम अभी कह रहे थे कि मैं जाकर वहाँ सुधार का काम अधिक वेग से आरंभ करूँ। यदि मेरे कुछ समर्थकों का इस तरह दमन हो जायेगा, तो मैं क्या कर सकूँगी? अभी तो चकबंदी के लिए कितने झगड़े उठाये जायेंगे। तो मैं समझ लूँ कि तुम मुझे कानूनी सहायता भी न दोगे!''

''मैं तो श्रमजीवी हूँ शैला! मुझे जो भी फीस देगा, उसी का काम करने के लिए मुझे परिश्रम करना पड़ेगा।''

''तुमको फीस चाहिए! क्या कहते हो इंद्रदेव? इसीलिए तितली की सहायता करने में तुम आनाकानी कर रहे हो न?''– शैला की वाणी में वेदना थी।

''अपनी जीविका के लिए मैं अब दूसरा कोई काम खोज लूँ। फिर और लोगों का काम बिना कुछ लिए ही कर दिया करूँगा। तब तक के लिए क्या तुम क्षमा नहीं कर सकती हो? –इंद्रदेव की मुक्तिमयी निश्चिंत अवस्था व्यंग्य कर उठी।''

शैला के हृदय में जो आंदोलन हो रहा था, उसे और भी उद्वेलित करते हुए इंद्रदेव ने फिर कहा, ''और यह पाठ भी तो तुम्हीं से मैंने पढ़ा है। उस दिन, तुमने जब मेरा प्रस्ताव अस्वीकार

करते हुए कहा था कि 'काम किये बिना रहना मेरे लिए असंभव है, अपनी रियासत में मुझे एक नौकरी और रहने की जगह देकर बोझ से तुम इस समय के लिए छुट्टी पा जाओ', तब तुम्हारी जो आज्ञा थी, वही तो मैंने किया। अपने इस त्यागपत्र में नील-कोठी के सर्वसाधारण कामों— अर्थात औषधालय, पाठशाला और हो सके तो ग्राम सुधार संबंधी अन्य कार्यों— के लिए दान करते हुए मैंने एक निधि उसमें लगा दी है, जिसका निरीक्षण तुमको ही आजीवन करना होगा। उसके लिए तुम्हारा वेतन भी नियत है। इसके अतिरिक्त...।"

"ठहरो इंद्रदेव! क्या तुम मुझे बंदी बनाना चाहते हो? मैं यदि अब वह काम न करूँ तो?" बीच ही में रोककर शैला ने पूछा।

"नहीं क्यों? तुमने मुझे प्रेरणा दी है, वही करके भी मैं क्या भूल कर गया? और तुमने तो उस दिन दीक्षा लेते हुए कहा था कि 'तुम्हारे और समीप होने का प्रयत्न कर रही हूँ', तो क्या यह सब करके भी मैं तुम्हारे समीप होने नहीं पाऊँगा?"

"क्यों नहीं?" कहते हुए सहसा नंदरानी ने उसी कमरे में प्रवेश किया।

शैला और इंद्रदेव दोनो ही जैसे एक आश्चर्यजनक स्वप्न देखकर ही चौंक उठे।

फिर नंदरानी ने हँसते हुए कहा, "मिस शैला, आप मुझे क्षमा करेंगी। मैं अनाधिकार प्रवेश कर आयी हूँ। इंद्रदेव से क्षमा माँगने की तो मैं आवश्यकता नहीं समझती।"

इंद्रदेव जैसे प्रकृतिस्थ होकर– "बैठिये भाभी! आप भी क्या कहती हैं?"

शैला ने लज्जा से अब अवसर पाकर नंदरानी को नमस्कार किया। नंदरानी ने हँसकर कहा, "तो मैं तुम दोनों को आशीर्वाद देती हूँ, यह जोड़ी सदा प्रसन्न रहे।"

अभिमान से भरा हुआ शैला का हृदय अपने को ही टटोल रहा था— क्या मेरे समीप आने के लिए ही इंद्रदेव का वह त्याग है?— यह प्रश्न भीतर-ही-भीतर स्वयं उत्तर बन गया।

शैला ने नंदरानी की प्रसन्न आकृति में विनोद की मात्रा देखी, वह क्षण-भर के लिए अपने को वास्तविक जगत में देख सकी। उसने एक साँस में निश्चय किया कि "हाँ" कह दूँ। किंतु अब प्रस्ताव करने में कौन आगे बढ़े। वह लज्जा और आनंद से मुस्कुरा उठी।

नंदरानी ने भाव पहचानते ही कहा, "मिस शैला! जब तुम इंद्रदेव को बहुत दूर तक अपने पथ पर खींच लायी हो, तब यों अकेले छोड़ देना क्या कायरता नहीं? बोलो, मैं किस दिन अपने इष्ट-मित्रों को निमंत्रित करूँ? मुझे इंद्रदेव का ब्याह करने का अधिकार है। मैं इनकी कुटुंबिनी हूँ। अब मुझे केवल तुम्हारी स्वीकृति चाहिए।"

शैला का सिर नीचे झुका हुआ था। उसकी ठुड्डी उठाकर नंदरानी ने कहा, "अब बहाना करने से काम नहीं चलेगा। कहो 'हाँ', बस मैं सब कर लूँगी।"

"बहन! मैं स्वीकार करती हूँ। परंतु इधर मेरे मन की जो दशा है, वह जब तक तितली का कुछ उपाय...।"

“चुप भी रहो; तितली, बुलबुल, कोयल, सबों का स्वागत होगा। पहले वसंत का उत्सव तो होने दो। मैं तितली को अपने पास रखूँगी। और इंद्रदेव को उसकी सहायता करनी होगी।”

शैला को चुप देखकर फिर नंदरानी ने कहा, “इंद्रदेव! तुम बोलते क्यों नहीं? क्या मैं तुम्हारी वकालत करूँ और तुम बैरिस्टर बनकर बैठे रहो?”

इंद्रदेव हँसकर बोले, “भाभी! संसार में कई तरह के न्यायालय होते हैं। आज जिस न्यायालय में खड़ा हूँ, वहाँ आप जैसे वकीलों का ही अधिकार है।”

“तो फिर मैं ही तुम्हारी ओर से स्वीकृति देती हूँ। कल अच्छा दिन है। यहीं मेरे बंगले में यह परिणय होगा। इंद्रदेव, तुम्हारा महत्वपूर्ण आडंबर हट गया है, तब तुम अपने मनुष्य के रूप में वास्तविक स्वतंत्रता का सुख लो। केवल स्त्री और पुरुष ही का संयोग जटिलताओं से नहीं भरा है। संसार के जितने संबंध-विनिमय है, उनमें निर्वाह की समस्या कठिन है। तुम जानते हो कि मैंने उनका त्यागपत्र फाड़कर फेंक दिया और रजिस्ट्री कराने के लिए उन्हें नहीं जाने दिया। उनसे सब अधिकार लेकर मैं उनको अपदस्थ करके नहीं रखना चाहती। वे मेरे देवता हैं। उनकी बुराइयाँ तो मैं देख ही नहीं पाती हूँ। हाँ, अर्थ-संकट है सही, पर यहीं उनकी मनुष्यता है। धोखा देकर कई बार उनसे कुछ झँस लेने वाले मित्र भी फिर उनसे कुछ ले लेने की आशा रखते हैं। क्या यह मेरे गौरव की वस्तु नहीं है? मैंने उनका त्यागपत्र अस्वीकार कर दिया है, परंतु अब मैं अर्थ-सचिव बन गई हूँ। अब वे सीधे मेरे पास सब कुछ भेज देते हैं। मैं कहती हूँ कि पुरुष और स्त्री को ब्याह करना ही चाहिए। एक-दूसरे के सुख-दुख और अभाव-आपदाओं को प्रसन्नता में बदलने के लिए सदैव प्रयत्न करना चाहिए। इसीलिए तुम दोनों को मैं एक में बाँध देना चाहती हूँ।”

शैला ने इंद्रदेव की ओर जिज्ञासा-भरी दृष्टि से देखा। इंद्रदेव ने मिसिर को पुकारकर कहा, “देखो, तितली नाम की एक स्त्री बाहर है, उसे बुला लाओ।”

तितली आयी। उसने नमस्कार किया। इंद्रदेव ने कुर्सी दिखलाकर कहा, “बैठो।”

सहसा उनके मन में वह बात चमक गई जो उनके और तितली के ब्याह के लिए धामपुर में एक बार अदृष्ट का उपहास बनकर फैल गई थी। फिर प्रकृतिस्थ होकर, तितली के बैठ जाने पर इंद्रदेव ने कहा, “मुझे तुम्हारी सब बातें मालूम हैं। मैं सब तरह की सहायता करूँगा। किंतु जब मधुबन इस समय कहीं जाकर छिप गया है, तब सोच-समझकर कुछ करना होगा। मैं उसका पता लगाने का प्रयत्न करूँगा। और रह गया शेरकोट, उसका कागज़ मैं देख लूँगा तब कहूँगा! बनजरिया का लगान जमा करवा दूँगा। फिर उसका भी प्रबंध कर दिया जायेगा। तब तक तुम यहीं रहो। क्यों शैला! कल के लिए तुम तितली को निमंत्रित न करोगी?”

तितली ने चुपचाप सुन लिया। शैला ने कहा, “तितली! कल के लिए मेरी ओर से निमंत्रण है, तुमको यहीं रहना होगा।”

तितली के मुँह पर उस निरानंद में भी एक स्मित-रेखा झलक उठी।

दूसरे दिन वैवाहिक उत्सव के समाप्त हो जाने पर तितली वहाँ से बिना कुछ कहे-सुने कहीं चली गई! शैला और इंद्रदेव दोनों ही उसको बहुत खोजते रहे।

* * *

चुनार की एक पहाड़ी कंदरा में रहते हुए, मधुबन को कई सप्ताह हो चुके थे। वह निस्तब्ध रजनी में गंगा की लहरों का, पहाड़ी के साथ टकराने का, गंभीर शब्द सुना करता। उसके हृदय में भय, क्रोध और घृणा का भयानक संघर्ष चला करता। उसके जीवन में आरंभ से ही अभाव था, पर वह उसे उतना नहीं अखरता था जितना यह एकांतवास। सब कुछ मिलकर भी जैसे उसके हाथ से निकल गया। छोटी-सी गृहस्थी, उसमें तितली-सी युवती का सावधानी से भरा हुआ मधुर व्यवहार; और भी भविष्य की कितनी ही मधुर आशाएँ सहसा जैसे आने वाले पतझड़ के झपेटे में पड़कर पत्तियों की तरह बिखरकर तीन-तेरह हो गईं।

वह अपने ही स्वार्थ को देखता, दूसरों के पचड़े में न पड़ा होता, तो आज यह दिन देखने की बारी न आती। उसने मन-ही-मन विचार किया कि समूचा जगत मेरे लिए एक षड्यंत्र रच रहा था। और मूर्ख मैं, एक भावना में पड़कर, एक काल्पनिक महत्व के प्रलोभन में फँसकर, आज इस कष्ट में कदर्थित हो रहा हूँ।

उसके जीवन का गणित भ्रामक नहीं था। और फल अशुद्ध निकलता दिखायी पड़ रहा है। तब यह दोष उसका हो ही नहीं सकता। नहीं, इसमें अवश्य किसी दूसरे का हाथ है!

मुझे पिशाच के भयानक चंगुल में फँसाकर सब निर्विघ्न आनंद ले रहे हैं। कौन? राजो... तितली... मैना... सुखदेव... तहसीलदार... और शैला! सब चुपचाप? तब मैं कितने दिनों तक छिपा-छिपा फिरूँगा? और शेरकोट, बनजरिया, उनमें तितली का सुंदर-सा मुख— सोचते-सोचते उसे झपकी आ गई। भूख से भी वह पीड़ित था। दिन ढल रहा था; परंतु जब तक रात न हो जाये, बाजार तक जाने में वह असमर्थ था। उसकी निद्रा स्वप्न को खींच लायी।

उसने देखा तितली हँसती हुई अपनी कुटिया के द्वार पर खड़ी है। उधर से इंद्रदेव घोड़े पर उसी जगह आकर उतर गये। उन्होंने तितली से कुछ पूछा और तितली ने मंद मुस्कान के साथ न जाने क्या उत्तर दिया। इंद्रदेव प्रसन्न-से फिर घोड़े पर चढ़कर चले गये।

उस समय अपने को उसने घुमची की लता की आड़ में पाया। वह छिपकर देख रहा है। – हाँ।

फिर सुखदेव आता है। वह भी तितली से बात करके चला जाता है। स्वप्न की संध्या दिन को ढुलकाकर रात को बुला लायी। अंधेरा हो गया। तारे निकल आये। उसे फुसफुसाहट सुनायी पड़ी। तितली अपने अंचल में दीप लिये किसी को पथ दिखलाने के लिए खड़ी है। उसका मुख धूमिल है। वह घबरायी-सी जान पड़ती है।

दूसरा दृश्य, अंधकार में और भी मलिन, कलुषपूर्ण हृदय की भूमिका में अत्यंत विकृत होकर प्रतिभासित हो उठा। शेरकोट— खंडहर, उसमें भीतरी यह लिपी-पुती चूने से चमकीली एक छोटी-सी कोठरी! और राजो बन-ठनकर बैठी है। क्यों? किवाड़ बंद है। भीतर ही वह शीशे में अपना रूप देख रही है। बाहर किवाड़ों पर खट-खट का शब्द होता है। वह मुस्कुराकर उठ खड़ी होती है।

स्वप्न देखते हुए भी मधुबन और बलपूर्वक पलकों को दबा लेता है। आँखें जो बंद थीं, वह मानो फिर से बंद हो जाती हैं। आगे का दृश्य देखने में वह असमर्थ है।

तब, वह पुरुष है। उसको मान के लिए मर-मिटना चाहिए, परंतु यह नीच व्यापार यों ही चलता रहे। कुत्सित प्राणियों का कालिमापूर्ण... नहीं, अब नहीं। संसार उसको अपने एक कोने में, सुख नहीं, आनंद नहीं, किसी तरह जीवन को बिता लेने के लिए भी अवसर नहीं देना चाहता। तो जिनको मैं परमप्रिय मानता हूँ, उनका अपमान, चाहे वह उन्हीं की स्वीकृति से हो रहा हो, नहीं होने दूँगा। नहीं– वह सपने का वीर हुँकार कर उठा।

पहले तितली ही– हाँ, उसी का गला घोंटना होगा। उसे प्यार करता हूँ। नहीं तो संसार में न जाने क्या कहाँ हो रहा है, मुझे क्या? नहीं, तितली को मेरी रक्षा के बाहर संसार में जाने से अपमान, कुत्सा और दु:ख भोगना पड़ेगा। मैं चढूँगा फाँसी पर और चढ़ने के पहले एक बार सबको जी खोलकर गाली दूँगा। संसार को— हाँ, इसी पाजी, नीच और कृतघ्न संसार को— जिसने मेरा मूल्य नहीं समझा और मुझे हाहाकार में व्यथित देखकर धीरे-धीरे मुस्कुराता हुआ अपनी चाल पर चला जा रहा है... यह क्या रहने के उपयुक्त है? तब... ठीक तो... अंधकार है।

वह फिर उसी बनजरिया में घुसता है।

फिर तितली का भोला-सा मुख!

उसका साहस विचलित होता है। शरीर काँपने लगता है और आँखें खुल जाती हैं। वह पसीने से तर उठ बैठता है।

दिन ढल चुका है। वह धीरे-धीरे अपनी कंदरा से बाहर आया। गंगा की तरी में खेत सुनसान पड़े थे। फसल कट चुकी थी। दूर पर किले की भद्दी प्राचीर ऊँची होकर दिखायी पड़ी। वह धीरे-धीरे बाजार की ओर न जाकर किले की ओर चला गया। सूर्य डूब रहे थे। अभी कोयले से भरी हुई छोटी-छोटी हाथ-गाड़ियाँ रिफार्मेटरी के लड़के ढकेल रहे थे। मधुबन ने आँख गड़ाकर देखा; वह, वह रामदीन तो नहीं है? है तो वही।

वह वेग से चलने लगा और रामदीन के पास जा पहुँचा। उसने कहा, "रामदीन!"

रामदीन ने एक बार इधर-उधर देखा, फिर जैसे प्रकृतिस्थ हो गया। इधर कई महीनों से वह धामपुर को भूल गया था। उसे अच्छा खाना मिलता। काम करना पड़ता। तब अन्य बातों की

चिंता क्यों करे? आज सामने मधुबन! क्षण-भर में उसे अपने बंदी जीवन का ज्ञान हो गया। वह स्वतंत्रता के लिए छटपटा उठा।

"मधुबन बाबू!" वह चीत्कार कर उठा।

"क्या तू छूट गया रे, नौकरी कर रहा है?"

"नहीं तो, वही जेल का कोयला ढो रहा हूँ।"

"और कौन है तेरे साथ?"

"कोई नहीं, यही अंतिम गाड़ी थी। मैं ले जा रहा हूँ, और लोग आगे चले गये हैं।"

दूर पर प्रशांत संध्या की छाती को धड़काते हुए कोई रेलगाड़ी स्टेशन की ओर आ रही थी। बिजली की तरह एक बात मधुबन के मन में कौंध उठी। उसने पूछा, "मैं कलकत्ता जा रहा हूँ, तू भी चलेगा?"

रामदीन— नटखट रामदीन! अवसर मिलने पर कुछ उत्पात– हलचल– उपद्रव मचाने का आनंद छोड़ना नहीं चाहता। और मधुबन तो संसार की व्यवस्था के विरुद्ध हो ही गया था। रामदीन ने कहा, "सच! चलूँ?"

"हाँ, चल!"

रामदीन ने एक बार किले की धुँधली छाया को देखा और वह स्टेशन की ओर भाग चला। पीछे-पीछे मधुबन!

गाड़ी के पिछले डिब्बे प्लेटफॉर्म के बाहर लाइन में खड़े थे। प्लेटफॉर्म के ढलुए छोर पर खड़े होकर गार्ड ने धीरे-धीरे हरी झंडी दिखायी। उस जगह पहुँचकर भी मधुबन और रामदीन हताश हो गये थे। टिकट लेने का समय नहीं। गाड़ी चल चुकी है, उधर लौटने से पकड़े जाने का भय। गार्ड वाला डिब्बा गार्ड के समीप पहुँचा। दूर खड़े स्टेशन मास्टर से कुछ संकेत करते हुए अभ्यस्त गार्ड का पैर डिब्बे की पटरी पर तो जा पहुँचा, पर वह चूक गया! दूसरा पैर फिसल गया। दूसरे ही क्षण कोई भयानक दुर्घटना हो जाती, परंतु मधुबन ने बड़ी तत्परता से गार्ड को खींच लिया। गाड़ी खड़ी हुई। स्टेशन पर आकर गार्ड ने मधुबन को दस रुपये का नोट देना चाहा। उसने कहा, "नहीं, हम लोग देहाती हैं, कलकत्ता जाना चाहते हैं।" गार्ड ने प्रसन्नता से उन दोनों को अपने डिब्बे में बिठा लिया।

गाड़ी कलकत्ता के लिए चल पड़ी।

उसी समय बनजरिया में उदासी से भरा हुआ दिन ढल रहा था। सिरिस के वृक्ष के नीचे अपनी दोनों हथेलियों पर मुँह रखे हुए, राजकुमारी चुपचाप आँसू की बूँदें गिरा रही थी। उसी के सामने बटाई के खेत में से आये हुए जौ-गेहूँ के बोझ पड़े थे। गऊ उसे सुख से खा रही थी। परंतु राजकुमारी उसे हाँकती न थी।

मलिया भी पीठ पर रस्सी और हाथ में गगरी लिए पानी भरने के लिए दूसरी ओर चली जा रही थी।

राजकुमारी मन-ही-मन सोच रही थी– मैं ही इन सब उपद्रवों की जड़ हूँ। न जाने किस बुरी घड़ी में, मेरे सीधे-सादे हृदय में, संसार की अप्राप्त सुख-लालसा जाग उठी थी, जिससे मेरे सुशील मधुबन के ऊपर यह विपत्ति आयी। तितली भी चली गई। उसका भी कुछ पता नहीं। सुना है कि कल तक लगान का रुपया न जमा हो जायेगा, तो बनजरिया भी हम लोगों को छोड़ना पड़ेगा। हे भगवान!

वैशाख की संध्या आयी। नारंगी के हल्के रंग वाले पश्चिम के आकाश के नीचे, संध्या का प्राकृतिक चित्र मधुर पवन से सजीव हो हिल रहा था। पवन अस्पष्ट गति से चल रहा था। उसमें अभी कुछ-कुछ शीतलता थी! सूर्य की अंतिम किरणें भी डूब चुकी थीं, किंतु राजकुमारी की भावनाओं का अंत नहीं!

सहसा तितली ने पास आकर कहा, "मलिया कहाँ गई? जीजी! क्या तुमने गऊ के ही खाने के लिए इतना-सा बोझ यहाँ डाल दिया है?"

वही दृढ़ स्वर! वही अविचल भाव!

राजो ने चौंककर उसकी ओर देखा, "तितली! तू आ गई! मधुबन का पता लगा? मुकदमें में क्या हुआ?"

“कहीं पता नहीं लगा। और न तो उनके बिना आये मुकदमा ही चलता है। तब तक हम लोगों को मुँह सीकर तो रहना नहीं होगा जीजी! जीना तो पड़ेगा ही; जितनी साँसे आने-जाने को हैं, उतनी चलकर ही रहेंगी। फिर यह क्या हो रहा है?” कहकर उसने गऊ को हाँकते हुए अपनी छोटी-सी गठरी रख दी।

“आग लगे ऐसे पेट में। जीकर ही क्या होगा। भगवान मुझे उठा ही लेते तो क्या कोई उनको अपराध लगता! मैं तो…!”

“मैं भी तुम्हारी-सी ही बात सोचकर छुट्टी पा जाती जीजी! पर क्या करूँ, मैं वैसा नहीं कर सकती। मुझे तो उनके लौटने के दिन तक जीना पड़ेगा। और जो कुछ वे छोड़ गये हैं, उसे संभालकर उनके सामने रख देना होगा।”

तितली की प्रशांत दृढ़ता देखकर राजो झल्ला उठी। वह मन-ही-मन सोचने लगी, “पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ क्या ऐसी ही होती हैं? इतनी विपत्ति में भी जैसे इसको कुछ दुख नहीं? न जाने इसके मन में क्या है!”

मनुष्य इसी तरह प्राय: दूसरे को समझा करता है। उसके पास थोड़ा-सा सत्यांश और उस पर अनुमानों का घटाटोप लादकर वह दूसरे के हृदय की ऐसी मिथ्या मूर्ति गढ़कर संसार के सामने उपस्थित करते हुए निस्संकोच भाव से चिल्ला उठता है कि लो यही है वह हृदय, जिसको तुम खोज रहे थे। मूर्ख मानवता!

राजकुमारी ने एक वार और भी किया, “तितली! कल लगान का रुपया न जमा होने से बनजरिया भी जायेगी।”

तितली ने गठरी खोलकर अपना कड़ा, और भी दो-एक जो अँगूठी-छल्ला था, राजकुमारी के सामने रख दिया।

राजो ने पूछा, “यह क्या?”

“इसको बेचकर रुपये लाओ जीजी। लगान का रुपया देकर जो बचे, उससे एक दालान यहीं बनवाना होगा। मैं यहाँ पर कन्या-पाठशाला चलाऊँगी। और खेत के सामान में जो कुछ कमी हो, उसे पूरा करना होगा। गायें बेच दो। आवश्यकता हो तो बैल खरीद लेना। तुम देखो खेती का काम, और मैं पढ़ाई करूँगी। हम लोगों को इस भीषण संसार से तब तक लड़ना होगा, जब तक वे लौट नहीं आते।”

फिर ठहरकर तितली ने कहा, “जी मिचलाता है, थोड़ा जल दो जीजी!”

अंत:सत्वा तितली के उस उत्साह भरे पीले मुँह को राजो आश्चर्य से देख रही थी। मलिया ने आकर उसका पैर छू लिया। बनजरिया में दिया जल उठा।

मैला आँचल

फणीश्वर नाथ 'रेणु'

गाँधीजी के ग्राम स्वराज की परिकल्पना और उनके सत्य, अहिंसा, स्वावलंबन तथा सत्याग्रह का स्वरूप उनके न रहने के बाद किस रूप में विकसित हुआ, 'मैला आँचल' उपन्यास में फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने इसका मूल्यांकन करने का प्रयास किया है।

उपन्यास-अंश में गाँधीजी के विचारों, सिद्धांतों और उनके सपनों को आगे बढ़ाने वाले चरित्र 'बावनदास' के संघर्षों का चित्रण हुआ है।

जोतखी काका के दरवाज़े पर भीड़ लग गई है।

...ठीक कहते थे जोतखी काका। अभी क्या हुआ है, अभी और बाकी है। अच्छर-अच्छर सब बात फैल गई।... ऐसे अगरजानी आदमी की बात काटने का नतीजा सारा गाँव भोग रहा है।

जंगली जड़ी-बूटी से ही जोतखी काका टनमना गए हैं। खुद उठ नहीं सकते, बोली साफ़ नहीं हुई है; घिघियाकर, मुँह टेढ़ा करके बोलते हैं, "छयअआँछ!...छयअआँछ!⋯ आँ, आँ!"

अर्थात सर्वनाश! सर्वनाश! हाँ, सर्वनाश होगा।

"जोतखी काका, आज हुकुम हुआ है कि सारा दिन बासी-मुँह रहकर साम को कमला के किनारे जलपरवाह करना होगा।" खेलावन यादव अब जोतखी जी की बात कभी नहीं काट सकता।... जोतखी जी ने कहा था, अट्ठारह साल की उमेर में सकलदीप को माता-पिता बियोग लिखा हुआ है... एकदम फल गई बात। सकलदीप दो महीने तक बिलल्ला की तरह कलकत्ते में भटकता रहा। ...ससुर पकड़ लाया है। उसका भी पराच्छित करना होगा... होटल में बर्तन माँजता था।

जोतखी जी इशारे से कहते हैं, "नहीं, हरगिज नहीं! ऐसा काम मत करो!"

जोतखी काका ने क्या कहा? गाँधीजी काहे मारे गए... क्या कहते थे, अच्छा हुआ! धत्त्! उनका मगज अब सही नहीं है।

दूसरे पहर का जुलूस निकला। बाँस की एक रंथी बनकर सजायी गई है— लाल, हरे, पीले, कागज़ों से। एक ओर बालदेव जी ने कंधा दिया है, दूसरी ओर सुमरितदास, जिबेसर मोची और सकलदीप ने। ...खेलावन यादव नहीं आया है। सकलदीप को बहुत समझाया, गाली दिया, मगर सकलदीप ने तो आकर रंथी में कंधा ही लगा दिया।

टन-टनाँग! घड़ीघंट बजता है।

तिन्न तिरकिट-तिन्ना! धिन्ना धा-धा-धिन्ना!
आँ रे! काँच हि बाँस के खाट रे खटोलना...

गाँव के भकतिया लोगों ने समदाउन शुरू किया। समदाउन की पहली कड़ी ने सबके रोएँ को कलपा दिया, सबके दिल गम्हड़ उठे और आँखे छलछला आयीं।

आँ रे काँचहि बाँस के खाट रे खटोलना
आखैर मूँज के र हे डोर!
हाँ रे मोरी रे ए ए ए हाँ आँ आँ रामा रामा!
चार समाजी मिली डोलिया उठाओल
लई चलाल जमूना की ओर!
हाँ रे मोरी रे ए...!

अब कोई अपने को नहीं संभाल सकता है। सब फफक-फफककर रो पड़ते हैं। जुलूस आगे को बढ़ रहा है। धीरे-धीरे सभी जुलूस में आकर मिल जाते हैं, रोते हुए चलते हैं। बूढ़े रोते हैं, बच्चे रोते हैं, जवान रो रहे हैं, औरतें रो रही हैं। ...सकलदीप की जवान बहू दहलीज से देखती है। उसके ओंठ काँप रहे हैं। रह-रहकर ओंठ थरथराते हैं और अंत में वह अपने को संभाल नहीं सकती है। वह दौड़ती है जुलूस के पीछे। खेलावनसिह चिल्लाते हैं, "कनियाँ, कनियाँ!... ऐ कनियाँ!"

हाँ आँ रे गोड़ तोरा लागौं हम भैया रे कहरिवा से
घड़ी-भर डोली बिलगाव!
माई जे रोवय...

...माँ रो रही हैं। भारथमाता रो रही है।

रामदास हाथ में खँजड़ी लिए चुपचाप रो रहा है। ...उसी के पाप से महात्मा जी मारे गए हैं। उसने साधू के अखाड़े को भरस्ट किया है। ...परसों रमपियरिया की माये गाँव से मछली का सालन माँगकर लायी थी। रमपियरिया रात में उठकर चुराकर खा रही थी। महंथ रामदास ने रँगे हाथ पकड़ लिया था– बुआरी मछली की कुट्टा!

रमजूदास की स्त्री छाती पीट-पीट कर रो रही है। ... ठिठरा चमार की बारह साल की बेटी रो रही है– बाबा हो!... बाबू हो!

बापू!...

कमली रेडियो अगोरकर बैठी हुई है। उसकी आँखों से आँसू टप-टपकर गिर रहे हैं। माँ आँचल से बेटी के आँसू पोंछती है और खुद रोती है, "वे तो नर-रूप धारन कर आए थे... लीला दिखाकर चले गए।"

रेडियो से आँखों देखा हाल प्रसारित हो रहा है। "अब... अब चंदन की चिता तैयार है। बस, अब कुछ ही क्षणों में... देखिए, पंडित नेहरू देवदास गाँधीजी से... महात्मा जी के सुपुत्र से कुछ कह रहे हैं। ...नरमुंड ...नरमुंड, कहीं भी एक तिल रखने की जगह नहीं... (कोलाहल की आवाज़ क्रमश: तेज हो रही है। ...जय ...जय!) अपार जन-समूह में मानो लहरें आ गई हैं; सभी एक बार, अंतिम बार महामानव की पवित्र चिता को अंतिम बार देखना चाहते हैं। ... एंबुलेंस गाड़ियाँ बेहोश लोगों को ढो रही हैं!... औ... औ... आह! अब... पश्चिम आकाश में सूर्य अपनी लाली बिखेरकर अस्त हो रहा है और इधर... महामानव की चिता में अग्निशिखा... धरती का सूरज अस्त हो रहा है। क्षिति-जल-पावक... पाँच तत्वों का पुतला... (गीता-वाणी सुनायी पड़ती है) – जन्मबंधविनिर्मुक्ता: पदं गच्छन्त्यानामयम्...।"

"माँ, माँ!"

"माँ, माँ..." कमली स्पष्ट सुनती है, कोई पुकार रहा है। कौन पुकारता है उसे माँ!

"क्या हुआ बेटी?" माँ बाहर से दौड़ी आती है।

"मेरा बच्चा... मेरा... मेरा बेटा...!"

ओं शांति! शां... ति...!

* * *

"सेत्ताराम! सेत्ताराम!"

"ओ बावनदास जी! आइए!" लछमी मोढ़ा देती है।

"बालदेव जी कहाँ हैं?"

"आइये, साहेब बंदगी, जै हिंद!" बालदेव जी आ गए।

"जै हिंद!"

बावनदास को देखकर डर लगता है– एकदम सूखकर काँटा हो गए हैं। ...बाल इतना ज्यादा कैसे पक गया? ...ओ! आज टोपी नहीं पहने हैं, इसीलिए। आवाज़ भी बदल गई है। बालदेव जी कहते हैं "आपको तो अब यहाँ समय ही नहीं है। ...उस दिन हम अकेले जिस समय से रेडियो में सुने, उसी समय से लेकर दूसरे दिन जलपरवाह तक, सब कुछ किये। किसी तरह संभाल लिया। सराध के दिन तहसीलदार साहब भोज देने वाले हैं; बामन-राजपूत, यादव और हरिजन सभी एक पंगत में बैठकर खायेंगे। अच्छा हुआ, आप भी आ गए। अकेले हम...।"

"नहीं बालदेव जी, हम रहेंगे नहीं। हम ज़रूरी काम से जा रहे हैं।"

सोचा, एक बार आप लोगों से भेंट करते चलें। हम तुरत... अभी चले जायेंगे।"

"अच्छा, उधर का हाल-समाचार क्या है, सुनाइये!"

"हाल क्या सुनियेगा! अब सुनना-सुनाना क्या है! रामकिसुन आसरम में भी हरिजन-भोजन होगा। ...बिलेकपी कल मर गया। सिवनाथबाबू आए हैं पटना से। ...ससांक जी परांती[1] सभापति हो गए हैं, वह भी पटना में ही रहेंगे। ...सब आदमी अब पटना में रहेंगे। मेले[2] लोग तो हमेशा वहीं रहते हैं। ...सुराज मिल गया, अब क्या है! ...छोटनबाबू का राज है। एक कोरी बेमान, बिलेक मारकेटी के साथ कचेहरी में घूमते रहते हैं। हाकिमों के यहाँ दाँत खिटकाते फिरते हैं। सब चौपट हो गया..." बावनदास कहते-कहते रुक जाता है।

"छोटनबाबू की बात मत पूछिए। अब तो घर-घराना सहित काँगरेसी हो गए हैं।"

"नहीं बालदेव, छोटनबाबू-जैसे छोटे लोगों की बात जाने दो। यह बेमारी ऊपर से आयी है। यह पटनियाँ रोग है। ...अब तो और धूमधाम से फैलेगा। भूमिहार, रजपूत, कैथ, जादव, हरिजन, सब लड़ रहे हैं। ...अगले चुनाव में तिगुना मेले चुने जायेंगे। किसका आदमी ज्यादे चुना जाये, इसी की लड़ाई है। यदि रजपूत पाटी के लोग ज्यादा आये तो सबसे बड़ा मंतरी भी राजपूत होगा। ...परसों बात हो रही थी आसरम में। छोटनबाबू और अमीनबाबू बतिया रहे थे— गाँधीजी का भसम लेकर ससांक जी आवेंगे। छोटनबाबू बोले, जिला का कोटाभसम जिला सभापति को ही लाना चाहिए। ...ससांक जी क्यों ला रहे हैं। इसमें बहुत बड़ा रहस[3]। ...हा-हा-हा-हा!" बावनदास विचित्र हँसी हँसता है। ऐसी हँसी तो कभी नहीं देखी— बालदेव जी ने भी नहीं।

"काहे? हँसते काहे हैं दास जी?"

"हा-हा-हा-हा!... अरे, वही अमीनबाबू तुरत उठकर बैठ गए; बोले, आप ठीक कहते हैं छोटनबाबू। गाड़ी तो चली गई। कटिहार जाने से गाड़ी मिल सकती है।... तुरंत मोटर इस्टाट करके दोनों रमाना हो गए। सभापति-मंतरी... हो राम! राम मिलाए जोड़ी...! हा-हा! चले दोनों... हा-हा! भसम लाने... हा-हा! देस को भसम कर देंगे ये लोग! भसमासुर!"

"दास जी, मालूम होता है कोई सोसलिट ने आपको..."

"सोसलिस? सोसलिस? क्या कहेगा सोसलिस हमको? ...सब पाटी समान। उस पाटी में भी जितने बड़े लोग हैं, मंतरी बनने के लिए मार कर रहे हैं। सब मेले-मंतरी होना चाहते हैं बालदेव! देस का काम, गरीबों का काम, चाहे मजूरों का काम, जो भी करते हैं, एक ही लोभ से। ...उस पाटी में बस एक जैपरगासबाबू हैं। हा-हा-हा! उनको भी कोई गोली मार देगा। ... फिर भसम लेने के लिए सभापति-मंतरी साथे-साथ...!"

नया चूड़ा और नया गुड़ एक थरिया में ले आती है लछमी– "जरा बालभोग कर लीजिए। ...थोड़ा-सा है। दूध-दही तो भोज के लिए जमाया जा रहा है।"

---

1. प्रांतीय 2. एम.एल.ए. 3. रहस्य

बावनदास बगल की झोली का मुँह फैलाते हैं। लछमी कहती है, "यह क्या? ...जलपान कीजिए! झोली में क्यों लेते हैं?"

लछमी की आँखे न जाने क्यों सजल हो जाती हैं। इतने दिनों के बाद एक वैष्णव आया और बिना पत्तल जुठाए चला जायेगा? ...नहीं, वह ऐसा नहीं होने देगी।

"नहीं। बालभोग तो आपको करना ही होगा", लछमी जिद्द करती है, "दास जी, बिनती करती हूँ...!"

बालदेव जी देखते हैं, बावनदास को कुछ हो गया है,... बड़ा अटर-पटर बोलते हैं! चेहरा भी एकदम बदल गया है, आँखें लाल हैं, कपड़ा कितना मैला हो गया है! वह सोलह-सत्रह साल से बावनदास के साथ हैं, कभी तो ऐसा हँसते नहीं देखा। ...अलमुनियाँ का लोटा और बाटी नहीं छोड़ते हैं कभी।

जलपान करके हाथ धोते हुए बावनदासजी कहते हैं, "बालदेव जी, अब हम चलेंगे। पुवरिया-लैन की गाड़ी कोदलिया टीसन में जाकर पकड़ेंगे। ...आपसे एक काम है।"

बावनदास झोली से लाल रंग का एक बस्ता निकालते हैं। बस्ता खोलकर कागज़ का छोटा-सा पुलिंदा निकालते हैं। "बालदेव जी! ...सब महतमा जी के खत हैं। गंगुली जी ने एक बार कहा था– ज़रूरत पड़ने पर हमें दीजियेगा, ...आने के समय याद ही नहीं रहा। आप पुरैनियाँ कब तक जाइयेगा? ...चार-पाँच दिन के बाद? तब ठीक है, आप रख लीजिये। गंगुली जी को दे दीजियेगा... ज़रूर!"

परम श्रद्धा-भक्ति से सहेजी हुई पवित्र चिट्ठी को बावनदास एकटक देख रहा है।... फिर एक-एक कर अलग-अलग छाँटता है। हवा से एक चिट्ठी उड़कर बिछावन के नीचे चली गई, बावनदास ने चट से उठकर सर से छुला लिया।... उसे एक अक्षर का भी बोध नहीं, लेकिन वह प्रत्येक चिट्ठी के एक-एक शब्द पर निगाह डालता है; लगता है, सचमुच पढ़ रहा है। ...आखिरी चिट्ठी खत्म कर वह एक लंबी साँस लेता है।

बस्ता हाथ में लेकर बावनदास थोड़ी देर तक बेकार ही उसकी डोरी को उँगलियों में लपेटता और खोलता है। फिर एक लंबी साँस लेकर अचानक ही खड़ा हो जाता है, "लीजिये... सेत्ताराम-सेत्ताराम!"

बालदेव जी बस्ता लेकर लछमी के हाथ में दे देते हैं, "पौंती-पिटारी में रख दीजिए!"

लक्ष्मी बस्ता लेकर सर से छुलाती है, फिर छाती से लगाती है। वह एकटक बावनदास को देख रहा है। ...इस चिरकुट खद्धड़ की दोलाई से जाड़ा कैसे काटते हैं बावनदास जी?

"दास जी! ...इस चादर से जाड़ा कैसे काटते हैं? ...ठहरिए, एक पुराना कंबल है। ले लीजिए।" लछमी विनती के सुर में ही कहती है।

"नहीं माई!" बावनदास कंधे से झोली को लटकाते हुए कहता है, "नहीं माई, कंबल की ज़रूरत नहीं।"

लछमी चुप हो जाती है। ...बावनदास जी को अब कंबल की ज़रूरत नहीं। अब उन्हें किसी चीज की ज़रूरत नहीं। लछमी मानों सब कुछ समझ जाती है।

धरती फाटे मेंघ जल
कपड़ा फाटे डोर।
तन फाटे की औखदी
मन फाटे नहीं ठौर।

"अच्छा तो अब... जै हिंद!"

"जै हिंद!"

बावनदास लुढ़कता हुआ जा रहा है।... सोबरन का कटहा कुत्ता खिट-खिटाकर भूँकते हुए उस पर टूटता है। लेकिन, बावनदास उधर देखता तक नहीं है।... कुत्ता भी आश्चर्य से चुप हो जाता है। ज़रा-सा धेत्त-धेत्त भी नहीं किया?... कैसा आदमी है! कुत्ता बावनदास के पीछे-पीछे दुम हिलाते, मिट्टी सूँघते कुछ देर तक जाता है।

"बावनदास जी का मन एकदम फट गया है।" लछमी कहती है।

बालदेव जी कहते हैं, "अरे मन फटेगा क्या! थोड़ा ढंग भी करता है। ...गंगुली जी चिट्ठी लेकर क्या करेंगे? ...दूसरे की चिट्ठी भले लोग नहीं पढ़ते हैं, दोख होता है।"

कोदलिया टीसन पर गाड़ी में बैठकर बावनदास को लगता है, वह कोई तीरथ करने जा रहा है। बहुत दिनों से उसके मन में लालसा है– एक बार जगरनाथ जी जाने की! ... केदारनाथ, बदरिकानाथ वह गया है। उसकी आँखों के आगे जगरनाथ का पट-छाता और छड़ी लिए तीर्थ से लौटे हुए बावनदास की मूर्ति आ खड़ी होती है।

जगरनथिया रौ भाय,

बाबा रौ बिराजे उड़िया देस में।

एक यात्री ने कहा, 'अरे, माघ महीना में कौन जगरनाथ से लौटा है भाई!, दूसरे ने कहा "जरा जोर से, बावन गुसाईं जी!"

बावनदास खिड़की से बाहर की ओर देखता है। खेतों में लोग धान काट रहे हैं। ...नदी में मछली मार रहे हैं, भैंस चरा रहे हैं। बावन ने बहुत सफर किया है, लैन से– कलकत्ता काँगरेस, लखनौ काँगरेस, बैजवाड़ा, साबरमती आसरम, महात्मा गाँधी की जन्मभूमि काठियावाड़, फिर बंबै। ...रेलवे लैन के किनारे काम करते हुए लोगों के मुखड़े, विभिन्न प्रदेश के लोगों के मुखड़े, उसकी आँखों के आगे इकट्ठे हो जाते हैं। ...खगड़ा टीसन पर उतरकर एक बार नत्थूबाबू के यहाँ जाने का विचार था, लेकिन नत्थूबाबू कलकत्ता गए हैं। खोखी दीदी और काकी जी भी गई हैं। ...खोखी दीदी ने एक बार बावनदास की तस्वीर बनायी थी। ...बोली, बस आप जैसे बैठे हैं, बैठे रहिए। एक कागज़ पर पेंसिल से तस्वीर बनाने लगी। ...काकी जी ठीक माये जी की तरह बोलती हैं। नाथबाबू रहते तो बावन को आज बहुत भारी मदद मिलती। ...बहुत कड़े आदमी हैं। गोस्सा में जब होते हैं तो किसी को कुछ नहीं बूझते हैं। ...कंफ जेहल के साहेब को जिनगी-भर याद रहेगा। ...नाथबाबू का चेहरा लाल हो गया था उस दिन, एकदम लाल टेसु। ...पिछले साल नाथबाबू और चौधरी जी बंबै जा रहे थे। बावन भी साथ में था। ... मोगलसराय टीसन पर गाड़ी में भीड़ देखकर होस गुम! इस छोर से उस छोर तक घूम आए, मगर कहीं घुसने ही नहीं दिया। ...चौधरी जी हँसते हुए बोले, "एहो गाड़ी छूटतऽ लच्छन लगैछेहों।" नाथबाबू ने एक डिब्बा के हैंडिल को जैसे ही पकड़ा कि अंदर से एक आदमी ने गुस्सा होकर कहा, "देखता है नहीं, इस पर लिखा हुआ– बंगाल के मेंबर के वास्ते रिजप है।"

नाथबाबू ने भी गुसाकर जवाब दिया था– "खूब देखता है। ...बंगाल में अब आप लोगों के जैसा आदमी फलने लगा है, यह भी देखता है। हाम भी ए.आई.सी.सी. का मेंबर है, आप भी उसी का मेंबर है, मगर आदमियत...।"

भीतर से किसी ने रसिकता की थी, "आदमियत तूले आर कोथा बोलबेन ना मोशाय। ... आसून, आपनार तो देखची ऐकेबारे त्रिमूर्ति..."[4]

बात भी कुछ ऐसी ही हो गई कि सभी हँस पड़े– चौधरी जी भी, नाथबाबू भी और डिब्बे के सभी मेंबर। ...हँसनेवाली बात नहीं है? चौधरी जी एकदम लंबा, याने चौधरी जी की लंबाई की बात तो सभी जानते ही हैं। पूरा ऊँचे कद का आदमी भी उनके कंधे के बराबर होता है। और, इधर नाथबाबू ठेठ-नाटे कद के! गोल चेहरा, चेहरे पर हरदम मुस्कराहट, वह भी छोटी-सी! और तीसरा मूर्ति-सेवक बावनदास! ...विचार कर देखिए– हँसने की बात है या नहीं! ...चौधरी जी ने ऊपर बेंच पर अपना बिस्तर लंबा किया था, नाथबाबू और बावनदास नीचे।

"ऐं? खगड़ा आ गया? ...सेत्ताराम! सेत्ताराम!"

खगड़ा स्टेशन पर उतरकर, बावनदास एक बार ऊपर आसमान की ओर देखता है। वह शाम तक पहुँच जायेगा। ...नहीं, नाथबाबू से नहीं भेंट होगी तो अब किससे भेंट करने जाये वह!...

कलीमुद्दींपुर की ओर जा रहा है बावन! ...कलीमुद्दींपुर पाकिस्तान में जाते-जाते बच गया है। एक बार हल्ला हुआ कि पाकिस्तान वाले कहते थे कि गाँव का नाम इस्लामी है, इसलिए इसको...! क्या बच्चों-जैसी बुद्धि!...

...सेत्ताराम! सेत्ताराम! बावनदास जल्दी-जल्दी डेग बढ़ाता है, ...आज जैसे हो, शाम तक उसे पहुँचना ही है एक जगह...। उस जगह का नाम भी अभी वह अपने मन में नहीं लायेगा।

चलते-चलते वह कभी-कभी रुककर उसाँसें लेता है— बहुत देर तक रोने पर बच्चे जिस तरह उसाँसें लेते हैं, उसी तरह! बावन की झोली में खँजड़ी है। खँजड़ी में लगी हुई झुनकी उसकी गति को एक लय में बाँध रही हैं— किन्न, किन्न, किन्न, किन्न! खेतों की मेड़ों पर, मैदान में, सड़कों पर, ऊँची-नीची जमीन पर उसके चरण पड़ते हैं। मंजिल करीब है अब। किन्न, किन्न, किन्न, किन्न...! और थोड़ी दूर... और आधा कोस! किन्न, किन्न...!

"जै महतमा जी! जै बापू! ...माँ! माँ ...धन्न हो प्रभू! एक परीक्षा से तो पार करा दिया प्रभू! बस यहीं... इसी साँहुड़ के नीचे! इसी कच्ची लीक के पास... डाल दो डेरा रे मन!"

...नागर नदी के किनारे! नागर को एक बहुत बड़ा गवाह बनाया है, दोनों देसवालों ने। नागर नदी ही सीमा-रेखा है। ...एक किनारा हिंदुस्तान, दूसरा किनारा पाकिस्तान! इस पार हिंदुस्तान, दूसरी ओर पाकिस्तान। नागर बारहों मास बहती है, सूखती नहीं कभी। शायद इसीलिए...!" रामडंडी माथा पर आ गया।

माघ की ठिठुरती हुई सर्दी! ...पछिया हवा भी चलती है। लगता है, आज की रात बदरीनाथ की तरह यहाँ भी बरफ गिरेगी। रामडंडी सिर पा आ गया...! बावन निराश नहीं

4. कृपया आदमियत का प्रश्न मत उठाइए। आइए, हमें तो एक साथ ही त्रिमूर्ति के दर्शन का सौभाग्य मिल रहा है।

होता है। जब तक सूरज नहीं उगेगा, वह टलेगा नहीं। …बात ही कुछ ऐसी है। यदि इस रास्ते से नहीं आयी गाड़ी तो…! वह दूर, बहुत दूर किसी गाँव की रोशनी को देखता है। दोनों हाथों को मलकर गर्म हो लेता है। …हाँ, गाड़ियाँ आयेंगी। पचासों गाड़ियाँ! कपड़े और चीनी और सीमेंट से लदी हुई गाड़ियाँ… जिसने खबर दी है उसे— उसका नाम वह जान जाने पर भी नहीं खोलेगा। बावन ने गाँधीजी की कसम खायी है। बेचारा गरीब… उसकी नौकरी चली जायेगी। …कटहा के दुलारचंद कापरा, वही जूआ कंपनीवाला, जिसकी जूए की दुकान पर नेवीलाल, भोलाबाबू और बावन ने फारबिसगंज मेला में पिकेटिन किया था। जूआ भी नहीं, एकदम पाकिटकाट खेला करता था और मोरंगिया लड़कियों, मोरंगिया दारू-गाँजा का कारबार करता था। …आज कटहा थाना काँग्रेस का सिकरेटरी है! …उसी की गाड़ियाँ हैं। सपलाई निसपिट्टर और कटहा थाना के दारोगा और यहाँ कलीमुद्दींपुर के नाकावाले हवलदार मिलाकर रकम आठ आना और इधर दुलारचंद कापरा रकम आठ आना। गाड़ियाँ सदर-चालू सड़क से नहीं आयेंगी। चौरपैड़ा[5] होकर चोरघाट होकर पार करेंगी। फिर उधर के व्यापारी को उस पार पहुँचा देगा। उधर के हाकिम-हुक्कामों को भी इसी तरह हिस्सा मिलेगा। लाखों रुपया का कारबार है। …वे आ गईं। हाँ, गाड़ियाँ …कच्ची लीक में पहियों की आवाज़! …हाँ गाड़ी ही है।

"जै भगवान! जै महतमा जी! सेत्ताराम! सेत्ताराम! … बल दो प्रभू! परीक्षा में पार करो गुरु! बापू! बापू! …माँ, माँ? झोली के अंदर वह कुछ टटोलता है।

वह झोली को कंधे से लटकाकर खड़ा हो जाता है। …नदी किनारे कोई पखेरू बोला, टिंटिक्। …किन्न! खँजड़ी की झुनकी ज़रा झनकी।

"भगवान! महतमा जी! …बापू! माँ! मुझे बुला लो अपने पास! क्या करूँगा इस दुनिया में रहकर! …धरम नहीं बचेगा।"

गाड़ियाँ आ गईं, एकदम करीब।

"अरे बा-आ-आ-प रे… भू-ऊ-त।" अगला गाड़ीवान डरा और दबी आवाज़ में अपने साथी से कहता है, "भूत!"

"छिऊँ…" बैल भड़कते हैं। कचकचाकर गाड़ियाँ रुक जाती है।

"सेत्ताराम! सेत्ताराम!"

कलीमुद्दींपुर नाका के सिपाही जी आगे बढ़ आते हैं, खखारकर पूछते हैं, "कौन है?"

बगल की झाड़ी से सामने आकर बावन ने कहा, "हम हैं। सेवक बावनदास!"

"बा व न दा स!" सिपाही जी का मुँह खुला-का-खुला रह जाता है। इस आदमी को वह सन् तीस से ही जानता है। चान टरे, सूरुज टरे…!

5. चोर रास्ता

सिपाही जी मुरेठा की पूछरी से मुँह छिपाते हैं। बावनदास हँसकर कहता है, "मुँह क्यों छिपाते हैं रामबुझावन सिंह जी! आज खुलकर खेला होना चाहिए! मुँह मत छिपाइए।"

"दास जी, हमारा क्या कसूर! आप तो जानते ही हैं..."

"सिंघ जी, बातचीत कुछ नहीं। गाड़ियाँ जायेंगी खगड़ा! ...लौटाइए।"

"गाड़ी त ना लौटी।"

"लौटी ना त ठाढ़ रही।"

अढ़ाई हज़ार रुपये हिस्से में मिल चुके हैं रामबुझावन सिंह को। क्या किया जाये?...

"दास जी ठहरिए! ...हम तुरत आते हैं।"

"अच्छी बात! ले आइए आज जो लोग पर्दे में हैं। जाइए!"

कलीमुद्दींपुर में एक होटिल-बँगला[6] है। ...हाकिम-हुक्काम लोग बराबर आते रहते हैं। बाँस-फूल का बड़ा-सा चौखड़ा है, गाँव के एकदम बाहर।

होटिल-बँगला में सप्लाई इंस्पेक्टर, दुलारचंद कापरा और कलीमुद्दींपुर के हवलदार साहब टेबल के चारों और बैठकर मोरंगिया माल पी रहे हैं। कलीमुद्दींपुर होटिल-बँगला के वेरसपतिया बावर्ची के हाथ का मुर्ग-मुसल्लम जिसने खाया, उसी ने जी खोलकर बक्कीस दिया।

सप्लाई इंस्पेक्टर साहब गिलास में चुस्की लगाते हुए मुस्कराते हैं, "अरे धत्त! इस मुर्ग-मुसल्लम से गर्मी थोड़ी आयेगी! हवलदार साहब! अरे, कोई दो टाँगवाली मुर्गी...।"

"क्या पूछते हैं, आज... महतमा जी के सराध की वजह से सभी भोज खाने चली गई हैं।"

दुलारचंद कापरा कहता है, "ऊँह! ऐसा जानता तो कटहा से ही दो रेप्यूजिनी को उठा लाते। सब मजा किरकिरा कर दिया।"

कड़कड़-कड़क्। सप्लाई इंसपेक्टर चतुरानंद सिंह जी मुर्गी की टाँग चबाते हैं।

कड़कड़ कड़क! बाहर साइकिल की आवाज़ होती है।

"कौन?"

"सलाम! हम रामबुझावन सिंह।"

"क्या हाल है?"

"सब चौपट! बावनदास..."

"आँ यें! बावनदास? कहाँ?"

...सभी गुम हो गए। बेरसपतिया बावर्ची इशारे से कहता है हवलदार साहब को, "मिल सकती है मुर्गी..., मगर..." रुककर दोनों हाथों की उँगलियाँ दिखलाता है।

हवलदार साहब कहते हैं, "अच्छा अभी ठहरो, तुम बाहर जाओ।"

"क्या हो अब?" सभी एक साथ लंबी साँस लेते हैं।

---

6. हाल्टिंग बँगला

"अकेला है या...?"

"एकदम अकेला!"

"मगर इसका मतलब जानते हैं?"

"दुलारचंद जी! ...कापरा जी!"

सबकी निगाहें मिलती हैं आपस में। दुलारचंद गिलास में बोतल से शराब ढालकर गटगटाकर पी जाता है। सभी उसकी ओर आशा-भरी दृष्टि से देखते हैं– "मैं पंजाबी हूँ जी! ... मगर आगे आप लोग जानो। मैं अपना फरज अदा करने जाता हूँ।"

...सिटसिट कर पछिया हवा चल रही है। हवलदार साहब साइकिल का पैडल चलाते हुए कहते हैं, "कापरा जी, आस-पास के गाँववालों का डर ज़रा भी मत कीजिए। ...ऐलान किया हुआ है कि सरहद के आस-पास रात-बिरात जो निकलेगा, उसे गोली लग जा सकती है।"

बावनदास ठीक पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ा है— बीच लीक पर।

दुलारचंद कापरा देखता है– हाँ, बावन ही है।

"कौन? ...कापरा जी! गाड़ी के पीछे से क्या झाँकते हैं? सामने आइये!" बावनदास हँसता है।

"बावन... रास्ता छोड़ दो। गाड़ी पास होने दो।"

"आइये सामने। पास कराइये गाड़ी। आप भी काँगरेस के मेंबर है और हम भी। खाता खुला हुआ है, अपना-अपना हिसाब-किताब लिखाइये। ...आज के इस पवित्तर दिन को हम कलंक नहीं लगने देंगे।"

"कापरा जानता है, इससे माथा-पच्ची करना बेकार है। वह हवलदार के कान में कुछ कहता है। फिर पुकारता है, "इसपिरिंग खाँ! कहाँ..."

"यह इसपिरिंग खाँ कापरा का अपना आदमी है। नाम फर्जी है। ...एक गाड़ी पर से उतरता है, फिर चुपचाप अगली गाड़ी पर जाकर बैठ जाता है।"

"बावनदास... मान जाओ।"

"......"

"हाँको जी गाड़ी इसपिरिंग खाँ!"

गाड़ी में जुते हुए दोनों जानवर अचरज से चौंक पड़ते हैं। भड़कते हैं। छिऊँ, छिऊँ! नाक से आवाज़ करके आगे बढ़ने से इंकार करते हैं। कापरा एक बैल की पूँछ पकड़कर ऐंठता है। हड्डी पट् से बोली, मगर बैलों ने लीक छोड़ दिया और गाड़ी को बगल की ओर लेकर भागे।

दूसरी गाड़ी...! एक बैल को हवलदार और दूसरे को कापरा, पूँछ मरोड़कर आगे बढ़ाते हैं। गाड़ीवान अवाक् होकर हाथ में रास थामे हुए है। ...यह क्या हो रहा है?

बैलगाड़ी पास हो गई! ...पास हो रही है। बावनदास बीच लीक पर खड़ा है और गाड़ियाँ ऊपर से आर-पार कर रही हैं। बैल भड़के ज़रूर, मगर...।

तीन-चार! चार गाड़ियाँ?

अब बावनदास ठीक बैल के सामने आकर खड़ा होता है। बैल उसे हुँत्था मारकर गिरा देता है। वह लीक पर लुढ़क जाता है। ...ठीक पहिए के नीचे।

मड़-मड़-मड़!

...बापू! माँ...!

गाड़ी पास! कट-कर्रर-कट!

गाड़ियाँ पास हो रही हैं। पचास गाड़ियाँ!

आखिरी गाड़ी जब गुजर गई तो हवलदार और रामबुझावन सिंह मिलकर, बावन की चित्थी-चित्थी लाश, लहू के कीचड़ में लथ-पथ लाश को उठाकर चलते हैं। ...नागर नदी के उस पार पाकिस्तान में फेंकना होगा। इधर नहीं... हरगिस नहीं।

दुलारचंद कापरा बावन की झोली लेकर उनके पीछे-पीछे जाता है।

नागर पार करते समय बावन के गले की तुलसी-माला नागर की बहती हुई धारा में गिर पड़ती है— सेत्ताराम!

चार बजे भोर को पाकिस्तान पुलिस ने घाट-गश्त लगाने के समय देखा– लाश!

"अरे यह तो उस पार के बौने की है। यहाँ कैसे आयी? ओ, समझ गए।" ...उठाओ जी, हनीफ और जुम्मन, ले चलो उस पार!"

बावन की ठंडी लाश झोली-झंडा के साथ फिर उठी।

बावन ने दो आज़ाद देशों की— हिंदुस्तान और पाकिस्तान की— ईमानदारी को, इंसानियत को, बस दो डेग में ही नाप लिया!

नागर नदी के बीच में पहुँचकर पाकिस्तान के पुलिस अफसर साहब ने कहा– "नदी में ही डाल दो। इसकी झोलवी को उस पार दरख्त से लटका दो। जल्दी।"

नागर की धारा हठात् कलकला उठी। सिपाही खँजड़ी को पानी में फेंकते हुए कहता है– "डमरू बजाके रघुपति राघव गाते रहो!"

झनक...!

* * *

मेरीगंज गाँव के एकमात्र मालिक, एकछत्र जमींदार, तहसीलदार बाबू विश्वनाथ मल्लिक का खम्हार देख लो!... जिस बड़े चौताल पर एक पंक्ति में बैठकर, गाँधीजी के सराध के दिन लोगों ने सरबघटन भोज खाया, उसी को घेरकर खलिहान बनाया है तहसीलदार साहब ने। दस बीघे का घेराव है।

रामकिरपाल सिंघ अपनी बची-खुची जमीन, फसल-सहित, तहसीलदार के यहाँ सूद-रेहन रखकर तीरथ करने जा रहे हैं— काशी, केदार जी, जहाँ तक जा सकें। तहसीलदार साहब ने कहा है, "बाकी रुपया जहाँ से लिखियेगा, मनीआर्डर से भेजते रहेंगे।"

बाकी खजाना, घर-खर्चा, जाड़े का कपड़ा, सकलदीप के प्राच्छित और सतनारायण पूजा के लिए खेलावन दो सौ रुपया माँगने लगा। तहसीलदार साहब ने साफ़ जवाब दे दिया– "हाथ में एक पैसा नहीं है।"...घर के पिछवाड़े की जमीन, जिसमें धान करीब-करीब तैयार हो गया था, लिख दी तो तीन सौ रुपये दिए।

सब मिलाकर पाँच हज़ार मन से क्या कम होगा धान इस बार!

तंत्रिमा-छत्रीटोली, कुर्म-छत्रीटोली, कुसवाहा-छत्रीटोली, धनुषधारी-छत्रीटोली और गहलोत-छत्रीटोली के जन-मजदूरों की हाँड़ी माघ महीने में ही टँग गई है। ...खम्हार में जितना धान हिस्सा होगा, उससे चौगुना तो कर्जा है। सब काट लिया जायेगा... और इस बार तो लगता है गाँव में गुजर नहीं चलेगा। खेलावन यादव पाँच हल चलाते थे, इस साल एक ही हल चलावेंगे, एक हल अधहरी[7] पर चलेगा। रामकिरपाल सिंघ ने तो खेती-बारी उठा ही दी। बुढ़िया को लेकर तीरथ चले गए। शिवशंकर सिंघ दो हल चलावेंगे। तहसीलदार साहब इस बार टक्टर[8] खरीद रहे हैं। बेतार कहता था, "उसी में सबकुछ होगा— हल, चौंगी, विधा, कोड़कमान, कादी-गोरा और धनकटनी भी! आदमी की क्या ज़रूरत? पानी का पंपू आवेगा। इंदर भगवान की खुशामद की ज़रूरत नहीं। कमला नदी में पंपू लगा दिया, मिसिन इसटाट कर दिया, और हथिया सूँड[9] की तरह सब पानी सोखकर खेत पटा देगा।" ... जब इंदर भगवान को ही नून-नेबू चटा रहे हैं तहसीलदार साहेब, तो आदमी उनके हुज़ूर में क्या है? कटिहार में एक जूट मिल और खुला है। तीन जूट मिल? ...चलो, चलो, दो रुपैया रोज मजदूरी मिलती है। गाँव में अब क्या रखा है!

एक महतमा जी का भरोसा था, उनको भी मार दिया। ...बालदेव से पूछो न, महतमा जी की जगह पर अब कौन आवेंगे। जमाहिरलाल? मगर महतमा जी तो एक ही कोपिन पहनते थे।...

विरंची कहता है, "जहाँ सभी जात भाई का, बारहो बरन का, ऊँच-नीच का पत्ता जूठा हुआ है, उस खम्हार में बरक्कत तो उधियाकर होगा। ...तहसीलदार साहेब आज कह रहे थे, इस बार सभी को अपने हिस्से में से औकाद मुताबिक धान देना होगा— एक कट्ठा, आध कट्ठा, एक सेर, आध सेर! ...महतमा जी का चन्ना हो रहा है।

"महतमा जी का चन्ना? क्या होगा चन्ना? सराध तो हो गया!"

---

7. आधा हल

8. ट्रैक्टर, 9. हाथी की सूँड

"नहीं!... रहुआ के गुरुबंसीबाबू ने डिल्ली में आकर एक करोड़ या... एक लाख... पता नहीं एक हज़ार... याद नहीं, मगर एक मोट रुपैया गुरुबंसीबाबू ने जमाहिरलाल को जाकर दिया है। ...महतमा जी का चन्ना! सुनते हैं, और भी देंगे।"

"ऐं! कौन हल्ला करता है उधर?"

"अरे कौन, रमपियरिया है।"

रमपियरिया और रमपियरिया की माँ के गले की आवाज़ सुनी जाती है। ...मठ पर झगड़ा हो रहा है। आज लगता है, मारपीट ज्यादा हुई है।

"रामदास गुसाईं आजकल दिन-भर गाँजा पीता है। एक-न-एक दिन वह भी खून करेगा।"

"साला, इन्हीं लोगों के पाप से धरती दलमला रही है। ...भरस्ट कर दिया। अब वह मठ है! लालबाग मेला का मीनाबाजार हो गया है। दस-दस कोस का लुच्चा-लफंगा सब आकर जमा होता है।"

तहसीलदार साहब आजकल रात में ऊपर के कोठे पर सुमरितदास के साथ कागज़-पत्तर ठीक करते रहते हैं। किसी-किसी दिन सुमरितदास सीढ़ी पर लड़खड़ाकर गिर जाता है। ...संथालों के घर में चुलाया हुआ महुआ का दारू बड़ा तेज होता है। गगाई माँझी रोज आधा कंटर दे जाता है। कभी-कभी तहसीलदार साहब भी नीचे उतरकर खूब हल्ला करते हैं; कमली की माँ को, कमली को, सेबिया बूढ़ी, सबको गोली से उड़ा देने की धमकी देते हैं।

...एक रात को तो इतना मात गए तहसीलदार साहब कि कमली की माँ डर से छाती पीटने लगी थी। ...ऐसी खराब-खराब गाली जो जिंदगी में कभी एक बार भी उनके मुँह से नहीं सुनी गई, कमली के बंद किवाड़ के सामने आकर ज़ोर-ज़ोर से बकने लगे। कमली दरवाज़ा खोलकर बाहर आयी और बोली, "बाबा! मुझे जो सजा देनी हो, दो। मगर माँ को गाली मत दो। उनका क्या कुसूर?"

कमली को देखते ही तहसीलदार साहब का नशा उतर गया, वे ऊपर भागे।

उस दिन से माँ कमली को एक मिनट भी अकेली नहीं छोड़ती है। बिलार को देखकर बच्चेवाली बिल्ली की सतर्क आँखें कैसी तेज हो जाती हैं। कमली की माँ को डर है, तहसीलदार साहब किसी दिन कोई कांड करेंगे।...

गाँव के घर-घर में 'हे भगवान' की पुकार मची हुई है। सुबह से शाम तक रात-भर धान-दबनी पर जो मजदूरी मिलती है, खलिहान पर रही बाकी मोजर हो जाता है। नाब-धोबी और मोची का खन भी नहीं जुड़ेगा इस बार।... मिल का भोंपा बजता है रोज, सुनते नहीं? बुला रहा हैं– 'आओ-ओ-ओ-हो-हो-हो-हो !'

रात के सन्नाटे में जोतखी काका की खाँसी बड़ी डरावनी सुनायी पड़ती है— खाँय-खाँय। ...दिन में ठीक दोपहर को अमड़ा गाछ पर बैठकर कागा जिस तरह बोलता है, ठीक उसी तरह खाँय-खाँय!

…खायेगा! सबको खा जायेगा। पिंगलवर्णा देवी क्रमश: बढ़ी आ रही है। उसके हज़ारों गण दाँत निकाले हैं, जीभ लपलपा रही है। …खायेगा …खायेगा!

भयार्त शिशु की तरह सारा गाँव कुहरे में दुबका हुआ थर-थर काँप रहा है!

"खबरदार- हो-य-य-य-य- खबरदार !"

तहसीलदार साहब ने खलिहान जोगाने के लिए तीन संथालों को और ड्योढ़ी के पहरा के लिए पहड़िया सिपाहियों को बहाल किया है। एक नाल बंदूक का लैसन फिर मिला है। …चलित्तर कर्मकार जब तक पकड़ाता नहीं है, पैसेवालों को रात में नींद नहीं आयेगी। पहरेवालों की बोली भी डरावनी मालूम होती है। आजकल कोठी के जंगल में शाम को ही एक रोशनी जलती है— बहुत तेज; फिर रात में और फिर भोर को।

बालदेव जी जगे हुए हैं। शाम को पुरैनियाँ से लौटे हैं, …उनको नींद नहीं आ रही है। पुरैनियाँ जाने के समय लछमी ने बावनदास का बस्ता, गाँधीजी की चिट्ठिवाला बस्ता देते हुए कहा था, लघुसंका करने के समय पॉकिट से निकालकर…। गाँगुली जी से वह भेंट करने गया था। गाँगुली जी ने पूछा था, "बावनदास ने कुछ दिया है आपको?"

"जी, ऊँहूँ… नहीं!" बालदेव जी इस जाड़े के मौसम में भी पसीना-पसीना हो गए थे।

न जाने क्यों गांगुली जी अचानक उदास हो गए।

…बालदेव अब जान रहते इन चिट्ठियों को नहीं दे सकता। इन चिट्ठियों को देखते ही जमाहिरलाल नेहरू जी बावनदास को मेनिस्टर बना देंगे, नहीं तो डिल्ली ज़रूर बुला लेंगे। …यों भी आज तक जितने लीडर आये, सबों ने बावनदास से ही हँसकर बातें कीं।

…उस बार मेनिस्टर साहेब आये। बड़े-बड़े लीडरों, मारवाड़ियों ने, वकीलों, मुक्तियारों और जमींदारों ने दसखत करके दरखास दिया, "भगवतीबाबू सरकारी वकील को काँग्रेस का मेंबर बहाल कर लिया जाये।" मगर मेनिस्टर साहब ने बावनदास से पूछा, "क्यों बावनदास जी?" भगवतीबाबू बहाल नहीं हुए। आखिर बावन की ही बात रही। …भगवतीबाबू ने बियालीस में सुराजिया को फाँसी पर झुलाने के लिए खूब बहस किया था।

और ये चिट्ठियों! …नहीं, वह हरगिस नहीं देगा। …लछमी को न जाने क्या हो गया है! जिस दिन से बस्ता मिला, दोनों बखत सतसंग के समय सिर छुलाकर सामने रखती थी। …रोज चंदन और फूल चढ़ाती थी इस पर। कभी-कभी चिट्यों;; को खोलकर पढ़ती और रोती। पुरैनियाँ से लौटने पर कुशल-मंगल पूछना तो दूर, पूछ बैठी, "गाँगुली जी को दे दिया न?"

"हाँ-हाँ दे दिया। इतना ना-परतीत था तो मेरे हाथ में दिया ही क्यों था?"

बालदेव जी को नींद नहीं आ रही है। बैलगाड़ी पर पुआल के नीचे बस्ता छिपाकर रख दिया है। धूनी तो धू-धू कर जल रही है।…

बालदेव जी उठकर बाहर जाते है।

"होये! ...खबरदार!" पहरू चिल्लाता है।

बालदेव जी धूनी के पास बैठकर लकड़ियों को ज़रा इधर-उधर करते हैं, फिर कनखी से लछमी के बिछावन की ओर देखते हैं। धीरे से बस्ता निकालकर खोलते हैं। उनका सारा देह सिहर रहा है, जीभ सूखकर काठ हो गई है, मुँह में थूक नहीं है। ...धूनी की आग लहलहा उठी है, लकड़ियाँ चिट्-चिट् बोलती हैं। ...बालदेव ने एक चिट्ठी निकाली...।

"दुहाई गाँधीबाबा! बाब रे...!" लछमी बिछावन पर से ही झपटती है– "गुसाईं साहेब! छि: छि: क्या कर रहे हैं! ...सतगुरु हो, छिमा करो! बालदेव! ...पापी, ...हत्यारा !"

धूनी की आग लछमी के कपड़े में लग जाती है। "लगने दो आग! मुट्ठी खोलिए! बस्ता दीजिए बालदेव जी! मैं जलकर मर जाऊँगी, मगर...।"

बालदेव जी की कसी हुई मुट्ठी खुल जाती है। लछमी बस्ते को कलेजे से चिपकाकर खड़ी होती है। कमर से लिपटा हुआ कपड़ा खुद-ब-खुद गिर पड़ता है। बालदेव जी कमंडल से पानी लेकर छींटते हैं।

"हे भगवान! सतगुरु हो! जै गाँधीजी! ...बाबा ...जै बावनदास जी! ह! ह:!" लछमी रो रही है।

वस्त्रहीन खड़ी लछमी रो रही है।

लछमी के हाथ-पाँव जल गए हैं; बड़े-बड़े फफोले निकल आए है।

बालदेव जी अपनी मसहरी में आकर छिप जाते हैं। लेटकर सोचते हैं– नहीं, अब यहाँ रहना अच्छा नहीं। वह किस मुँह से यहाँ रहेगा? ...लछमी की ओर अब यह निगाह उठाकर कभी देख नहीं सकेगा। ...वह पुरैनियाँ जायेगा, वहीं से चन्ननपट्टी चला जायेगा। वह अब अपने गाँव में रहेगा, अपने समाज में, अपनी जाति में रहेगा। ...जाति बहुत बड़ी चीज है। ...जाति की बात ऐसी है कि सभी बड़े-बड़े लीडर अपनी-अपनी जाति की पाटी में है। यह तो राजनीति है! लछमी क्या समझेगी? ...कासी जी का बरमचारी तो लगता है, अब यहीं खुट्टा गाड़ेगा ...ठीक है। ...नहीं, लछमी पर जाते-जाते अकलंग लगाकर नहीं जायेगा वह...

"गुसाईं साहेब, उठिए! सतसंग का समय हो गया!" लछमी कराहते हुए उठती है। सारा देह जल गया है।

रोज की तरह लछमी उठती है, उठकर बालदेव जी के बिछावन के पास आती है। मसहरी हटाकर बालदेव जी के अँगूठों में आँखें लगाती है, "सा हे ब-बंदगी!"

बालदेव जी रोते हैं— सिसकियाँ लेकर, "ल-छ-मी !"

"उठिए, गुसाईं साहेब!"

* * *

तीन महीने बाद!

1948 साल के अप्रैल की एक सुबह।

इस इलाके में अखतिया पटुआ-भदै बानेवाले किसानों को चाहिए कि सूरज उगने के पहले ही खेत को चार चास कर दें! भुरुकुआ तारा जगमग कर रहा है। कमला नदी के गड्ढे में उसकी छाया झिलमिला रही है। लगता है, नीलकमल खिला है।

कंधे पर हल लिए मरियल बैलों को हाँकता हुआ जा रहा है विरंची... कोयरीटोला के सोबरन का तीन बीघा खेत मनकुत्ता पर जोतता है। मगर इस साल टोटा पड़ेगा। उसकी सूरत, दियासलाई की डिबिया में जैसे हलवाहे की छापी रहती है— एकदम दुबला-पतला, काला-कलूटा; कमर में बिस्ठी वैसी ही है।

खेलावन अब खुद भैंस चराता है। तीन बजे रात में भैंस जैसा चरती है, वह दिन-भर में नहीं चरेगी। अब तो उसको अपना रमना[10] भी नहीं है, इसीलिए धत्ता की ओर ले जाता है। खेलावन यादव, यादवटोली का मड़र, भैंस चराकर लौट रहा है।

आसमान साफ़ हो रहा है। सबके चेहरों पर सुबह का प्रकाश पड़ता है— झमाई हुई ईंट जैसे चेहरे!

तहसीलदार साहब का ट्रैक्टर लेकर डलेवर साहब निकले— भट-भट-भट-भट-भट!

10. चरागाह

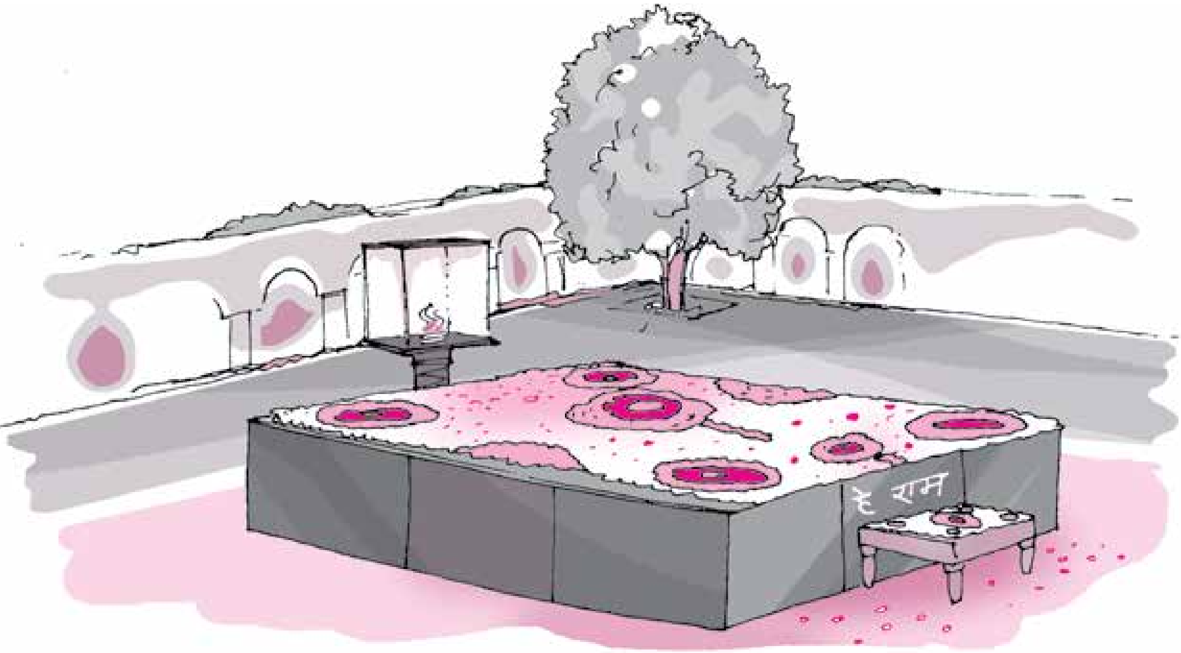

तहसीलदार साहब दोमंजिले की छत पर खड़े, हाथों को पीछे की ओर बाँधे टहल रहे हैं। भट-भट-भट-भट-भट! छत्त दलकती है। उसी के ताल पर उनका कलेजा धुकधुका रहा है। ...कौन आ रहा है? कौन? सेबिया? ...चुप! ...धीरे से! क्या?

"क्या?" तहसीलदार साहब पूछते हैं।

ऊँ! बतहा! नाती भेलहौं! सेबिया हँसती है।

"चुप! जिंदा है या...!

"ऊँह! गुजुर-गुजुर हेरैछै!"

...उफ! भगवान! तहसीलदार साहब थर-थर काँप रहे हैं।

कमला नदी के उस पार, अधपके रब्बी की फसल के उस पार, सेमलबाड़ी के जंगल के उस पार आसमान लाल हो गया है। दक्खिन... कोठी के बाग में गुलमुहर की लाल-लाल डालियाँ दमक उठती हैं।

ड्योढ़ी के उस पार बच्चे के रोने की आवाज़ नहीं जान पावे! इंतिजाम हो रहा है। कोई इंतिजाम ज़रूर हो जायेगा। ...यदि बच्चा ज़ोर से रोये! ऐं, गला टी... प दो। मार डालो!

दिल्ली में, राजघाट पर, बापू की समाधि पर रोज श्रद्धांजलियाँ अर्पित होती है। संसार के किसी भी कोने का, किसी भी देश का आदमी आता है, वहाँ पहुँचकर अपनी जिंदगी को सार्थक समझता है।

कलीमुद्दींपुर में, नागर नदी के किनारे, चोरघट्टा के पास साँहुड़ के पेड़ की डाली से लटकती हुई खद्दर की झोली को किसी ने शायद टपा दिया है। ...कौन लेगा? दुलारचंद कापरा ने एक महीने के बाद जाकर देखा, झोली तो लटक रही है... डाली से। जिला काँग्रेस का कोई भी वर्कर देखते ही पहचान लेगा– बावनदास की झोली है। झोली कापरा ने टपा दी। मगर झोली का फीता अभी भी डाली में झूल रहा है।

किसी दुखिया ने इसे चेथरिया पीर[11] समझकर मनौती की है, अपने आँचल का एक खूँट फाड़कर बाँध दिया है– "मनोकामना पूरी हो तो नया चेथरा बधाऊँगी!" बहुत बड़ी आशा और विश्वास के साथ वह गिरह बाँध रही है। ...दो चीथड़े।

पूर्णिया जेल के सामने बड़ा पुराना वटवृक्ष है। उसके नीचे सूखी हुई पत्तियाँ हवा में इधर-उधर उड़ रही हैं। वट के बँधाए चबूतरे के पास एक युवती खड़ी है।... साथ में है प्यारू!

खाली देह पर एक पुराना गमछा रखे, सिर्फ़ जाँघिया पहने एक वार्डर साहब बार-बार बारिक से निकलकर युवती को देखते हैं, "आप डाक्टर साहेब की वाइफ हैं?"

युवती ने गर्दन हिलाकर कहा– "नहीं!"

वार्डर साहेब प्यारू की ओर देखते हैं। प्यारू इस वार्डर को जानता है— बड़ा बेकूफ है। हमेसा खराब-खराब बात बोलता रहता है। वह मुँह फेर लेता है।

जेल का लौह-कपाट झनझनाकर खुलता है। युवती के चेहरे पर से प्रतीक्षा की बेचैनी हट जाती है। उसके चेहरे पर हाल ही में जो छोटी-छोटी झुर्रियाँ पड़ गई थीं, धीरे-धीरे खिल पड़ती हैं।

डाक्टर इस तरह मुस्कराता, डेग बढ़ाता, हाथ में छोटा बैग लिए आ रहा है, मानो लेबोरेटरी से छुट्टी पाकर लौटा है।

प्यारू का चेहरा देखने काबिल हो रहा है। वह अपने अंदर में उठने वाले खुशी के आवेगों को दबाता है, किंतु उसका मुँह अस्वाभाविक रूप से खुला हुआ है।

"तुम भी किसी जेल में थी क्या?"

"नहीं बाबा! ऐसी किस्मत ले के नहीं आयी। ...झुको! बाबा विश्वनाथ का प्रसाद है!" युवती रुमाल से सूखे बेलपत्तर और फूल निकालकर डाक्टर प्रशांत के सिर से छुलाती है।

"तब प्यारू... क्या हाल है? ममता! प्यारू से बातचीत हुई है या नहीं?"

"सुबह से और कर क्या रही हूँ!" ममता हँसते हुए कहती है, "घोड़ा-गाड़ी बुलाइये प्यारिचाँद सरकार!"

प्यारू हँसता-लँगड़ाता कचहरी की ओर जाता है।

---

11. जिस पेड़ को पीर समझकर चीथड़ा चढ़ाते हैं।

"तीन बजे रात में पहुँची पूर्णिया स्टेशन। ...ज्योति दी तो आजकल यहीं है न! उनके डेरे पर गई, सुबह उठकर कलक्टर साहब के बँगले पर गई। दस्ता आर्डर साथ में था तुम्हारी रिलीज का। ज्योति दी ने कहा, यदि कलक्टर साहब टूर पर निकल गए तो फिर देर हो सकती है! ... तो अभी कहाँ चलना है?" ममता मुस्कराती है।

"तुम मेरीगंज नहीं चलोगी?"

"क्यों नहीं? ...मैंने पंद्रह दिन की छुट्टी ले ली है।"

एस.पी.साहब का चपरासी खत लेकर आया है। एस.पी. साहब ने डाक्टर को अपने बँगले पर निमंत्रित किया है।

* * *

तहसीलदार साहब अब नीचे नहीं उतरते हैं। ऊपर ही रहते हैं। दिन-भर ताड़ी पीकर रहते हैं, कभी होश में नहीं रहते हैं। सुमरितदास बेतार से रोज पूछते हैं, "सोचा उपाय?"

"मेरा तो मगज नहीं काम कर रहा है।"

कमली की माँ दरवाज़ा कभी नहीं खोलती। कुएँ की ओर खुलनेवाला दरवाज़ा कभी-कभी खोलती है। ...कमरे के अंधकार में, एक कोने में एक छोटा-सा दीप जल रहा है। कमली की गोदी में उसका शिशु कपड़े में लिपटा सो रहा है। ...कमली कजरौटी में काजल पार रही है।

भट-भट भर्र-र्र

एक स्टेशन वैगन पूर्णिया-मेरीगंज रोड पर भागी जा रही है।

चलते समय ममता की नजर बचाकर प्यारू ने डाक्टर के हाथ में एक लिफाफा दिया है। आगे ड्राइवर की बगल में बैठा हुआ प्यारू कभी-कभी गर्दन उलटकर पीछे की ओर देखता है। डाक्टर साहब चिट्ठी पढ़ रहे हैं।

"प्राणनाथ!"

कमला की चिट्ठी है— एक सप्ताह पहले की चिट्ठी।

"प्राणनाथ !"

पता नहीं, समय पर यह पत्र तुमको मिले या नहीं। देर या सबेर, कभी भी मेरी यह चिट्ठी तुम्हें मिल ही जायेगी, मुझे पूरा विश्वास है। तुम मेरे पास दौड़े आओगे! ...तुम जानते हो, अब मुझे डर लगने लगा है। तुम्हारा... तुम्हारा ... कैसे लिखूँ? ...माँ कहती है, यदि तुम किसी तरह बाबा को लिख दो या मालूम करा दो कि मेरी होने वाली संतान के तुम पिता हो, तो मैं जी जाऊँ। विश्वास नहीं करती माँ! बाबूजी अब एकदम पागल हो गए हैं। न जाने कब क्या हो! तुम्हारी किताबों ने मुझे बहुत-कुछ सिखाया है। मुझे कितना बड़ा सहारा मिला है तुम्हारी किताबों से! लेकिन अब एक नयी किताब चाहिए जिसके पृष्ठ-पृष्ठ में लिखा हुआ हो— कमला! विश्वास करो! डरो मत! जो होगा, मंगलमय होगा...।"

डाक्टर एक ही साँस में इतना पढ़ गया। इसके बाद उसने ममता की ओर निगाह डाली। रात-भर की जगी ममता गाड़ी के हिचकोलों पर मीठी झपकी ले रही है। ...चोट लग जायेगी!

"और कितनी दूर?" ममता जागकर पूछती है।

"और एक घंटा," प्यारू कहता है।

डाक्टर आगे पढ़ता है– "...बाबा तुम्हारे बच्चे को मार डालेंगे।"

"नहीं! नहीं !"

"ऐं?" ममता पूछती है, "क्या है?"

डाक्टर ममता के हाथ में पत्र देकर बाहर की ओर देखता है। प्यारू गर्दन उलट-उलटकर डाक्टर साहब की ओर देखता है।

ममता आँखें मलते हुए पढ़ती है– "प्राणनाथ...! किसकी चिट्ठी है? कमला की?"

ममता पढ़ रही है। डाक्टर ने एक बार ममता की ओर देखा– ममता की नींद से माती आँखें एक बार चमकती हैं। पत्र शेष करके वह पूछती है, "और कितनी दूर?"

"अब और एक घंटा। रास्ता कच्चा है!"

"और वह गणेश कहाँ है?"

"उसकी तो एक लंबी कहानी है। ब्रह्मसमाज मंदिर में उसे रखवा दिया था। न जाने कहाँ से उसके एक चाचा ऊपर हो गए। बहुत बखेड़ा हुआ, जाति-धर्म का बवंडर उठाया। मैंने भी कह दिया ले जाओ!"

"उससे भैंस चरवाता है", प्यारू कहता है, "उसके गाँव का आदमी बराबर कचहरी आता है न!"

"मैंने मेडिकल गजट में तुम्हारी रिपोर्ट दे दी है। एक संक्षिप्त रिपोर्ट है— जंगली जड़ी-बूटी और यहाँ के गाँवों में प्रचलित टोटकों के बारे में— तुम्हारी चिट्ठियों से सार्ट करके लिख दिया।"

"लेकिन, मैंने तो फैसला कर लिया है, रिसर्च असफल होने की घोषणा कर दूँगा।"

"कोई रिसर्च कभी असफल नहीं होता है डाक्टर! तुमने कम-से-कम मिट्टी को तो पहचाना है। ...मिट्टी और मनुष्य से मुहब्बत। छोटी बात नहीं।"

डाक्टर ममता की ओर देखता है— एकटक। ममता बाहर की ओर देख रही है—विशाल मैदान! ...वंध्या धरती! ...यही है वह मशहूर मैदान— नेपाल से शुरू होकर गंगा किनारे तक— वीरान, धूमिल अंचल। मैदान की सूखी हुई दूबों में चरवाहों ने आग लगा दी है— पंक्तिबद्ध दीपों-जैसी लगती है दूर से। ...तड़बन्ना के ताड़ों की फुगनी पर डूबते हुए सूरज की लाली क्रमश: मटमैली हो रही है।

भर्र-र-र्र...

"सुमरितदास! अभी ट्रैक्टर क्यों चला रहा है? कहाँ ले जा रहा है, ड्राइवर से पूछो तो।" तहसीलदार साहब दोमंजिले की छत पर से पुकारते हैं।

"ट्रैक्टर नहीं। मोटर है, मोटर!"

"मोटर? ...कौन है?"

"डागडर !"

"कौन डाक्टर?"

सुमरितदास दौड़कर छत पर जाता है, "अपने... डागडरबाबू। साथ में एक जनाना है। ... प्यारू भी है।"

तहसीलदार साहब हाथ में बंदूक लेते हैं। सुमरितदास थर-थर काँपते हुए कहता है– "दुहाई! ऐसा काम मत कीजिए।"

"ऐसा काम नहीं करूँ? ...तब क्या करूँ?"

प्यारू पुकारता है, "मौसी! ...ओ मौसी!"

"कौन? प्यारू?" माँ दरवाज़े की फाँक से कहती है, "क्या है?"

"डागडरबाबू !"

"ऐहें-ऐहें-आँ-आँ," सौर-गृह में कमली का नन्हा रोता है, "ऐं-हें-ऐं-हाँ!"

ममता जल्दी से किवाड़ के पास जाकर कहती है, "किवाड़ खोलो मौसी! ...मैं हूँ ममता। खोलो तो पहले!"

किवाड़ के पल्ले खुल जाते हैं। ममता सौर-गृह के अंदर चली जाती है। ...डाक्टर अकेला, चुपचाप खड़ा है। सीढ़ी पर खड़ाऊँ की आवाज़ होती है— भारी-भरकम आवाज़! कोई ज़ोर-ज़ोर से पैर पलटकर चल रहा है।

"कौन है? डाक्टर?" तहसीलदार साहब चिल्लाते हैं।

"आइए! बैठिए डागडरबाबू!" सुमरितदास मसूढ़े निकालकर हँसता है, "आइए!"

"नहीं! ...सुमरितदास, इससे पूछो, कहाँ आया है? किसके यहाँ आया है? क्या करने आया है? क्या लेने आया है? ...पूछो!"

सुमरितदास बेतार डाक्टर के पास आकर कनखी और इशारों से समझाता है, "आजकल ज़रा ज्यादा ढलने लगी है न... इसीलिए!"

सौर-गृह के दरवाज़े की फाँक से कमली की माँ कहती है, "कमली के बाबू! कैसे हो तुम? जमाई को..."

"जमाई को क्या? अपने जमाई को क्यों नहीं कहती हो? वह मेरा पैर छूकर प्रणाम कहाँ करता है?"

डाक्टर तहसीलदार की चरण-धूलि लेता है।

तहसीलदार साहब अचानक फूटकर रो पड़ते हैं, डाक्टर साहब को बाँहों में जकड़कर रोते हैं, "मेरा बेटा! बाबू!... मेरा बेटा!"

सुमरितदास बेतार ने रात में ही घर-घर खबर पहुँचा दी– "कमली की सादी तो पहले ही डागडर बाबू से हो गई थी। ...तुम लोग तो जानते हो...! पाँच पंच को जानकर जब-जब सादी की बात पक्की हुई, एक-न-एक विघिन पड़ गया। इसीलिए कासी के पंडितों ने गंधरब-विवाह कराने को कहा। गंधरब विवाह की बात किसी को मालूम नहीं होने दी जाती है। यदि बच्चा हो तो सबसे पहले बाप उसको देखेगा तब और लोग। ...डागडर बाबू आ गए हैं। अब कल छट्ठी के भोज का निमंत्रण देने आया हूँ तुम लोगों को। कल सुबह से ही आनन-बधावा मचेगा।"

"इस्स! यह तो खिस्सा-कहानी जैसा हो गया! एकदम किसी को पता नहीं!"

ब्राह्मण टोली के पुरोहित देवानन झा ने लोगों से कहा, "अंगरेजी फैसनवालों का सात खून माफ है।"

जोतखी जी के कानों में बात पड़ी; उन्होंने घृणा से मुँह सिकोड़ लिया।

खेलावन यादव ने कहा, "पैसावाला अधरम भी करेगा तो वह धरम ही होगा।"

लेकिन निमंत्रण अस्वीकार करने की हिम्मत किसी में नहीं।

सुबह से औरतें झुंड बाँध-बाँधकर सोहर गाती हुई आने लगीं। लेकिन सबके चेहरे पर एक उदासी, एक मनहूस काली रेखा खिंची हुई है। ...मन में रंग नहीं।

तहसीलदार साहब बहुत देर तक अपने कमरे में चुपचाप बैठकर कुछ सोचते है; फिर बाहर आकर कहते हैं, "सुमरितदास! लोगों से कह दो... हरेक परिवार को पाँच बीघा के दर से जमीन मैं लौटा दूँगा। साँझ पड़ते-पड़ते मैं सब कागज़-पत्तर ठीक कर लेता हूँ। ...और संथाल टोली में जाकर कहो... वे लोग भी आकर रसीद ले जायें। एक पैसा सलामी या नज़राना, कुछ भी नहीं! अरे, मैं क्यों दूँगा? दे रहा है नया मालिक! ...मालिक साहब का हुकुम है, सुनते हो नहीं! रो रहा है वह! वह हुकुम दे रहा है। लौटा दो! दे दो, खेलावन को उसकी जमीन का सब धान दे दो।"

डाक्टर प्रशांत और ममता की आँखें चार होती हैं।

"मुँह क्या देखते हो? मुझे पागल समझते हो? ठीक है, पागल क्यों नहीं समझोगे? ...योगेश्वर कृष्ण ने अपनी सारी विद्याबुद्धि लगाकर कोशिश की, मगर दुर्योधन ने साफ़ कह दिया– सूई की नोक पर जितनी मिट्टी चढ़ती है, उतनी भी नहीं दूँगा। ...जमीन! ...धरती! एक इंच जमीन के लिए हायकोठ तक मुकदमा लड़ते हैं लोग! और मैं सौ बीघे जमीन दे रहा हूँ। पागल तो तुम लोग हो! अरे, यह जमीन तो उन्हीं किसानों की है, नीलाम की हुई, जब्त की हुई, उन्हें वापस दे रहा हूँ। मैं कहता हूँ, ऐलान कर दो, मालिक का हुकुम है!"

जै! जै! ...जै हो!

बोलिए प्रेम से– महतमा जी की जै!

डिग-डिग-डिडग।

रिंग-रिंग-ता-धिन-ता।

डा-डिग्गा-डा-डिग्गा!

झुमुर-झुमुर… हुर्रर-हुर्रर-हुर्रर!

हाँ… अब… अब ठीक है। अब देखो, सब चेहरों पर, मुर्दा चमड़ों पर लाली लौट रही है। सैकड़ों जोड़ी आँखें खुशी से चमक उठती हैं, मानों दीप जले हों।

कुमार नीलोत्पल की आज बरही है।

हाँ, ममता ने कमला के पुत्र को नाम दिया है— कुमार नीलोत्पल। डाक्टर ने आज पहली बार अपने पुत्र को गोद में लिया और देखा है। …दुबला-पतला, पीले रंग का रक्त-मांस का पिंड! ममता कहती है, "पटना ले चलो। एक महीने में ही तुम्हारा बेटा लाल हो जायेगा!" डाक्टर ने सैकड़ों 'डिलिवरी' केस किये हैं। किंतु कुमार नीलोत्पल! कमला का पीला चेहरा लाज से लाल हो गया था। डाक्टर की गोद में शिशु को देते वक्त उसकी बड़ी-बड़ी आँखों की पलकें झुकी हुई थीं। उसके ललाट पर सिंदूर का बड़ा-सा टीप जगमगा रहा था… अँधेरे में खड़ी 'सिल्हुटिड' तस्वीर-सी खड़ी माँ हाथ बढ़ाकर एक भयावनी छाया के हाथ में अपने शिशु को सौंप रही है। …अँधेरा…! भयावनी छाया! …नहीं, नहीं। डाक्टर ने अपने बायें हाथ की उँगलियों से नीलोत्पल के 'हार्ट' की धड़कन का अनुभव किया था, "अहा! नन्हा-सा दिल, धुक-धुक कर रहा है।"

सौर-गृह में, बारह दिन के शिशु की लंबी उम्र, सुंदर स्वास्थ्य, विद्याबुद्धि और धन-संपत्ति के लिए मंगलगीत गाये जा रहे हैं। डाक्टर जगा हुआ है। …उसका रिसर्च? ममता कहती है, "असफल नहीं हुआ है। मिट्टी और मनुष्य से इतनी गहरी मुहब्बत किसी 'लेबोरेटरी' में नहीं बनती।"

लेबोरेटरी! …विशाल प्रयोगशाला। ऊँची चहारदीवारी में बंद प्रयोगशाला। …साम्राज्य-लोभी शासकों की संगीनों के साये में वैज्ञानिकों के दल खोज कर रहे हैं, प्रयोग कर रहे हैं। …गंजी खोपड़ियों पर लाल-हरी रोशनी पड़ रही है। …मारात्मक, विध्वंसक और सर्वनाशा शक्तियों के सम्मिश्रण से एक ऐसे बम की रचना हो रही है जो सारी पृथ्वी को हवा के रूप में परिणत कर देगा… एटम ब्रेक कर रहा है मकड़ी के जाल की तरह! चारों ओर एक महा-अंधकार! सब वाष्प! प्रकृति-पुरुष… अंड-पिंड! मिट्टी और मनुष्य के शुभचिंतकों की छोटी-सी टोली अँधेरे में टटोल रही है। अँधेरे में वे आपस में टकराते हैं।

…वेदांत …भौतिकवाद …सापेक्षवाद …मानवतावाद! …हिंसा से जर्जर प्रकृति रो रही है। व्याध के तीर से जख्मी हिरण-शावक-सी मानवता को पनाह कहाँ मिले? …हा-हा-हा! अट्टहास! व्याधों के अट्टहास से आकाश हिल रहा है। छोटा-सा, नन्हा-सा हिरण हाँफ रहा

है। छोटे फेफड़े की तेज धुकधुकी! ...नीलोत्पल! नहीं-नहीं! यह अँधेरा नहीं रहेगा। मानवता के पुजारियों की सम्मिलित वाणी गूँजती है— पवित्र वाणी! उन्हें प्रकाश मिल गया है। तेजोमय! क्षत-विक्षत पृथ्वी के घाव पर शीतल चंदन लेप रहा है। प्रेम और अहिंसा की साधना सफल हो चुकी है। फिर कैसा भय! विधाता की सृष्टि में मानव ही सबसे बढ़कर शक्तिशाली है। उसको पराजित करना असंभव है, प्रचंड शक्तिशाली बमों से भी नहीं... पागलो! आदमी आदमी है, गिनीपिग नहीं। ...सबारि ऊपर मानुस सत्य!

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम्।
अनेक दिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्।
दिवि सूर्यसहस्त्र...।

...ममता गा रही है! सुबह हो रही है। बगल के कमरे में तहसीलदार साहब खर्राटे ले रहे हैं। डाक्टर उठकर खिड़कियाँ खोल देता है। मटमैली, अँधियारी में कोठी का बाग ठिठका हुआ किसी की प्रतीक्षा कर रहा है। गुलमुहर, अमलतास और योजनगंधा की नयी कलियाँ मुस्कराने को तैयार हैं। ...नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं...।

"प्रशांत!" ममता मुस्कराती हुई कमरे में प्रवेश करती है— सुबह को हौले-हौले बहानेवाली हवा-जैसी। सद्य:स्नाता ममता के भीगे-बिखरे केशगुच्छ को डाक्टर छू लेता है।

"अरे धत्! औरतों का भीगा केश नहीं छूना चाहिए। दोष होता है। पूछती हूँ, चाय पियोगे? कुमार साहब का दूध गर्म हो रहा है। लगता है, रात-भर जगे रहे हो। कुल्ली कर लो। मैं चाय ले आती हूँ।" ममता मुस्कराती हुई जाती है।

बेचारी ममता की जिंदगी का एकमात्र विलास— चाय! शीला कहती थी एक बार, "ममता दी चाय पीने का बहाना ढूँढ़ती रहती है। दिन-भर में दस-पंद्रह प्याली...।"

चाय की प्याली प्रशांत के हाथ में देते हुए ममता पूछती है, "पढ़ गए... महात्मा जी की आखिरी लालसा? मैं तो कहती हूँ, यह वह महाप्रकाश है, जिसकी रोशनी में दुनिया निर्भय हज़ारों बरस का सफर तय कर सकती है।"

"ममता! मैं फिर काम शुरू करूँगा— यहीं, इसी गाँव में। मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लहलहायेंगे। मैं साधना करूँगा, ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आँचल तले! कम-से-कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाये ओंठों पर मुस्कराहट लौटा सकूँ, उनके हृदय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ...।"

ममता हँसती है– "मन करता है, किसी को आँचल पसारकर आशीर्वाद दूँ— तुम सफल होओ! मन करता है, किसी कर्मयोगी के बढ़े हुए चरणों की धूलि लेकर कहूँ..." कहकर ममता प्रशांत के पैरों की ओर हाथ बढ़ाती है।

"ममता!"

"ममता-दी! ...लो इसे। दूध फेंकता है।" कमला अपने शिशु को गोदी में लेकर हँसती हुई आती है।

"दो! कैसे फेंकता है? कैसे पिलाती हो? बोतल दो।" ममता आलथी-पालथी मारकर बैठ जाती है और बच्चे को गोद में ले लेती है। "तुमने टेबलेट खा लिया कमला? खा लो!"

प्रशांत चुपचाप ममता को देख रहा है। शरतबाबू के उपन्यासों की यह नारी अपने विश्वास पर अडिग होकर आज भी आगे बढ़ रही है; रूप बदल दो, नाम बदल दो, समय बदल दो, जगह बदल दो, पर यह कभी बदल नहीं सकती।

कमला पूछती है, "प्यारू भी पटना चलेगा?"

"हाँ", ममता संक्षिप्त-सा उत्तर देती है।

"आएँ-ऐं...ऐं...," नीलू रोता है।

"ना-ना...। पी लो बाबू! राजा ! सोना! ...मानिक! ...नीलू! ...रोओ मत! अब रोने की क्या बात है प्यारे?" ममता हँसती है।

कलीमुद्दींपुर घाट पर चेथरिया-पीर में किसी ने मानत करके एक चीथड़ा और लटका दिया।

लेखकों के बारे में

मोहनदास करमचंद गाँधी

जन्म : 2 अक्तूबर 1869 (पोरबंदर, गुजरात)

मोहनदास करमचंद गाँधी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक प्रमुख नेता थे। उन्होंने इंग्लैंड से कानून की पढ़ाई की और इसके बाद लंबे समय तक दक्षिण अफ्रीका में वकील के रूप में काम किया। दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद-विरोधी आंदोलन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। 1915 में वह दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व किया। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान और उसके बाद के लेखकों और साहित्यकारों की एक पूरी पीढ़ी पर महात्मा गाँधी और उनके जीवन-मूल्यों का गहरा प्रभाव रहा।

प्रमुख रचनाएँ : *हिंद स्वराज*, *दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह*, *संपूर्ण गाँधी वांगमय* (महात्मा गाँधी के समस्त लेखों, भाषणों और रचनाओं का संचयन, 97 खंडों में), *सत्य के प्रयोग* (आत्मकथा)।

निधन : 30 जनवरी 1948

सोहनलाल द्विवेदी

जन्म : 22 फरवरी 1906 (फतेहपुर, उत्तर प्रदेश)

महात्मा गाँधी के दर्शन से प्रभावित द्विवेदी जी ने प्रचुर मात्रा में बाल साहित्य की रचना की। इन्होंने देशभक्ति की भावना भरने और नवयुवकों को देश के लिए बड़े-से-बड़े बलिदान के लिए प्रेरित करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी।

प्रमुख रचनाएँ : *भैरवी*, *वासवदत्ता*, *विषपान*, *युगाधार*, *जय गाँधी*, *बाँसुरी*, *झरना*, *बिगुल*, *बच्चों के बापू*, *चेतना*, *दूध बताशा*, *बाल भारती* आदि।

निधन : 1 मार्च 1988

जयशंकर प्रसाद

जन्म : 30 जनवरी 1889 (वाराणसी, उत्तर प्रदेश)

जयशंकर प्रसाद छायावादी काव्य के प्रवर्तक कवि हैं। इनका साहित्य जीवन की कोमलता, माधुर्य, शक्ति और ओज का साहित्य माना जाता है। इतिहास और दर्शन में इनकी गहरी रुचि थी जो इनके साहित्य में स्पष्ट दिखायी देती है। प्रसाद कवि के साथ-साथ सफल गद्यकार भी थे। इन्होंने चर्चित नाटक, कहानियाँ और उपन्यास भी लिखे हैं।

प्रमुख रचनाएँ : *चित्राधार*, *कानन-कुसुम*, *झरना*, *आँसू*, *लहर*, *कामायनी* (कविता-संग्रह); *अजातशत्रु*, *चंद्रगुप्त*, *स्कंदगुप्त*, *ध्रुवस्वामिनी* (नाटक); *कंकाल*, *तितली*, *इरावती* (उपन्यास); *आकाशदीप*, *आँधी*, *इंद्रजाल* (कहानी-संग्रह)।

निधन : 15 नवंबर 1937

सुमित्रानंदन पंत

जन्म : 20 मई 1900 (अल्मोड़ा, उत्तराखंड)

पंत ने आधुनिक हिंदी कविता को एक नवीन अभिव्यंजना पद्धति एवं काव्यभाषा से समृद्ध किया। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महात्मा गाँधी के आह्वान पर इन्होंने कॉलेज छोड़ दिया। ये अपनी जीवन दृष्टि के विभिन्न चरणों में छायावाद, प्रगतिवाद एवं अरविंद दर्शन से प्रभावित हुए।

प्रमुख रचनाएँ : *वीणा*, *ग्रंथि*, *ग्राम्या*, *पल्लव*, *युगांत*, *स्वर्ण किरण*, *स्वर्ण धूलि*, *कला और बूढ़ा चाँद*, *लोकायतन*, *चिदंबरा*।

निधन : 28 दिसंबर 1977

अकबर 'इलाहाबादी'

जन्म : 16 नवंबर 1846 (प्रयागराज, उत्तर प्रदेश)

अकबर रूढ़िवादिता एवं धार्मिक ढोंग के सख्त खिलाफ़ थे और अपने शेरों में ऐसी प्रवृत्तियों पर तीखा व्यंग्य करते थे। ये अदालत में एक छोटे मुलाज़िम थे, लेकिन बाद में कानून का अच्छा ज्ञान प्राप्त करते हुए सेशन जज के रूप में रिटायर हुए।

प्रमुख रचनाएँ : *गाँधीनामा, दुनिया में हूँ दुनिया का तलबगार नहीं हूँ, ग़म क्या, उससे तो इस सदी में, खैर उनको कुछ न आए, मुझे भी दीजिए अखबार*।

निधन : 15 फरवरी 1921

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

जन्म : 8 दिसंबर 1897 (ग्वालियर, मध्य प्रदेश)

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' साहित्यकार होने के साथ ही एक सफल पत्रकार भी थे। इनकी संपादकीय टिप्पणियाँ अपनी निर्भीकता, खरेपन और कठोर शैली के लिए जानी जाती हैं। 1952 में ये भारतीय संसद के सदस्य भी बने। *इनकी कविताओं में भक्ति-भावना, राष्ट्र-प्रेम तथा विद्रोह का स्वर प्रमुखता से आया है। इनके साहित्य में गाँधीवादी विचारधारा की प्रमुखता रही है।*

प्रमुख रचनाएँ : *उर्मिला, कुंकुम, रश्मिरेखा, अपलक, क्वासि*।

निधन : 29 अप्रैल 1960

हरिवंशराय बच्चन

जन्म : 27 नवंबर 1907 (प्रयागराज, उत्तर प्रदेश)

हरिवंशराय बच्चन इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रहे। बाद में ये भारतीय विदेश सेवा में चले गए। कविता के अलावा बच्चन ने अपनी आत्मकथा भी लिखी, जो हिंदी गद्य की बेजोड़ कृति मानी जाती है।

प्रमुख रचनाएँ : *मधुशाला*, *निशा निमंत्रण*, *एकांत संगीत*, *मिलनयामिनी*, *आरती और अंगारे*, *टूटती चट्टानें*, *रूप तरंगिणी* (कविता-संग्रह); *क्या भूलूँ क्या याद करूँ*, *नीड़ का निर्माण फिर*, *बसेरे से दूर*, *दशद्वार से सोपान तक* (आत्मकथा, चार खंडों में)।

निधन : 18 जनवरी 2003

भवानी प्रसाद मिश्र

जन्म : 29 मार्च 1913 (होशंगाबाद, मध्य प्रदेश)

कविता और साहित्य के साथ-साथ राष्ट्रीय आंदोलन में जिन कवियों की सक्रिय भागीदारी थी, उनमें ये प्रमुख हैं। इन्होंने गाँधी वाङ्मय के हिंदी खंडों का संपादन भी किया। गाँधीवाद पर आस्था रखने के कारण इन्होंने अहिंसा और सहनशीलता को रचनात्मक अभिव्यक्ति दी है। इनकी कविताओं में गाँधी-दर्शन का प्रभाव तथा उसकी झलक देखी जा सकती है

प्रमुख रचनाएँ : *सतपुड़ा के जंगल*, *सन्नाटा*, *गीतफ़रोश*, *चकित है दुख*, *बुनी हुई रस्सी*, *खुशबू के शिलालेख*, *अनाम तुम आते हो*, *इदं न मम्*।

निधन : 20 फरवरी 1985

सुदर्शन

जन्म : 1896 (सियालकोट, पाकिस्तान)

सुदर्शन का मूल नाम पंडित बद्रीनाथ भट्ट था। सुदर्शन प्रेमचंद की परंपरा के रचनाकार हैं। इन्होंने हिंदी और उर्दू दोनों में लिखा है। साहित्य सृजन के अतिरिक्त इन्होंने अनेक फ़िल्मों की पटकथा और गीत भी लिखे।

प्रमुख रचनाएँ : *हार की जीत*, *सच का सौदा*, *अठन्नी का चोर*, *साइकिल की सवारी*, *तीर्थ यात्रा*, *पत्थरों का सौदागर*।

निधन : 16 दिसंबर 1967

प्रेमचंद

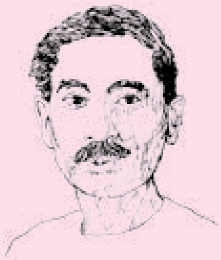

जन्म : 31 जुलाई 1880 (लमही, बनारस)

प्रेमचंद का मूल नाम धनपत राय था। इन्होंने शिक्षा विभाग में नौकरी की, परंतु महात्मा गाँधी के आह्वान पर सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। प्रेमचंद के कथा साहित्य का संसार बहुत व्यापक है। बड़ी से बड़ी बात को सरल भाषा में सीधे और संक्षेप में कहना प्रेमचंद के लेखन की प्रमुख विशेषता है।

प्रमुख रचनाएँ : *मानसरोवर* (कहानी-संग्रह, आठ खंडों में); *सेवासदन*, *प्रेमाश्रम*, *रंगभूमि*, *कायाकल्प*, *निर्मला*, *गबन*, *कर्मभूमि*, *गोदान* (उपन्यास)।

निधन : 8 अक्तूबर 1936

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

जन्म : 29 दिसंबर 1900 (मिर्ज़ापुर, उत्तर प्रदेश)

गद्य में अपने तेवर और शैली के कारण उग्र अपने समय के चर्चित लेखक रहे। पत्रकारिता से उग्र का सक्रिय संबंध था। 'चॉकलेट' इनकी बहुचर्चित पुस्तक है। आत्मपरक पुस्तक 'अपनी खबर' में उनकी गद्य शैली का उत्कृष्ट रूप मिलता है।

प्रमुख रचनाएँ : *चंद हसीनों के खतूत*, *फागुन के दिन चार*, *सरकार तुम्हारी आँखों में*, *घंटा*, *दिल्ली का दलाल*, *शराबी*, *वह कंचन सी काया*, *पीली इमारत*, *चित्र-विचित्र*, *काल-कोठरी*, *कंचन वर*, *कला का पुरस्कार*, *गालिब और उग्र*, *जब सारा आलम सोता है* आदि।

निधन : 23 मार्च 1967

सुभद्रा कुमारी चौहान

जन्म : 16 अगस्त 1904 (प्रयागराज, उत्तर प्रदेश)

सुभद्रा कुमारी चौहान हिंदी की प्रसिद्ध कवयित्री, लेखिका एवं स्वतंत्रता सेनानी थीं। ये राष्ट्रीय चेतना की एक सजग कवयित्री रही हैं। इन्होंने अपनी अनुभूतियों को कहानी में भी व्यक्त किया। इनकी कहानियों में गाँधीवादी दर्शन की छाया स्पष्ट दिखायी देती है।

प्रमुख रचनाएँ : *मुकुल और त्रिधारा* (कविता-संग्रह); *बिखरे मोती*, *उन्मादिनी*, *सीधे-सादे चित्र* (कहानी-संग्रह)।

निधन : 15 फरवरी 1948

रामवृक्ष बेनीपुरी

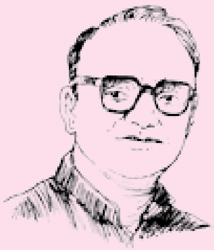

जन्म : 23 दिसंबर 1899 (मुजफ्फरपुर, बिहार)

रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म बिहार के मुजफ्फरपुर ज़िले के बेनीपुर गाँव में हुआ था। साहित्यकार होने के साथ ही बेनीपुरी एक सफल पत्रकार भी थे। गद्य की विविध विधाओं में उनके लेखन को व्यापक प्रतिष्ठा मिली।

प्रमुख रचनाएँ : *पतितों के देश में* (उपन्यास); *चिता के फूल* (कहानी-संग्रह); *अंबपाली* (नाटक); *माटी की मूरतें* (रेखाचित्र); *पैरों में पंख बाँधकर* (यात्रा वृत्तांत), *जंजीरें और दीवारें* (संस्मरण)।

निधन : 9 सितंबर 1968

फणीश्वर नाथ 'रेणु'

जन्म : 4 मार्च 1921 (पूर्णिया, बिहार)

रेणु का बचपन आज़ादी की लड़ाई को देखते-समझते बीता। बचपन में महात्मा गाँधी के आंदोलनों का इन पर काफी प्रभाव था। इनके मशहूर उपन्यास 'मैला आँचल' का प्रमुख चरित्र 'बावनदास' महात्मा गाँधी के विचारों का ही रूपांतरण माना जाता है। इन्होंने आंचलिक जीवन की प्रत्येक धुन, गंध, लय, ताल, सुर, सुंदरता और कुरूपता को शब्दों में बाँधा है।

प्रमुख रचनाएँ : *मैला आँचल*, *परती परिकथा*, *जुलूस*, *दीर्घतपा*, *कितने चौराहे* (उपन्यास); *आदिम रात्रि की महक* (कहानी-संग्रह); *ऋणजल-धनजल*, *नेपाली क्रांतिकथा* (रिपोर्ताज)।

निधन : 11 अप्रैल 1977

'पढ़ें और बढ़ें' शृंखला की कुछ अन्य पुस्तकें

रिश्तों की खिड़कियाँ, भाग- 1

मूल्य – ₹ 110.00

कोड – 21190

ISBN – 978-93-5292-890-3

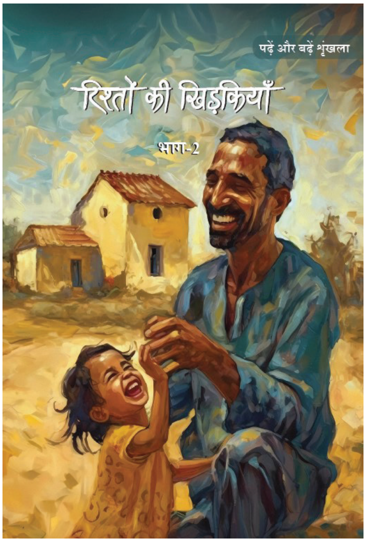

रिश्तों की खिड़कियाँ, भाग- 2

मूल्य – ₹ 110.00

कोड – 21191

ISBN – 978-93-5292-866-8

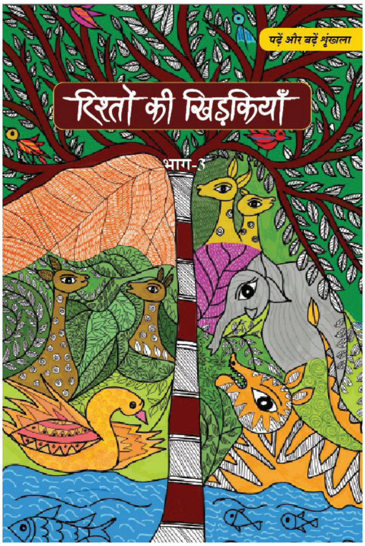

रिश्तों की खिड़कियाँ, भाग- 3

मूल्य – ₹ 145.00

कोड – 21192

ISBN – 978-93-5292-813-2

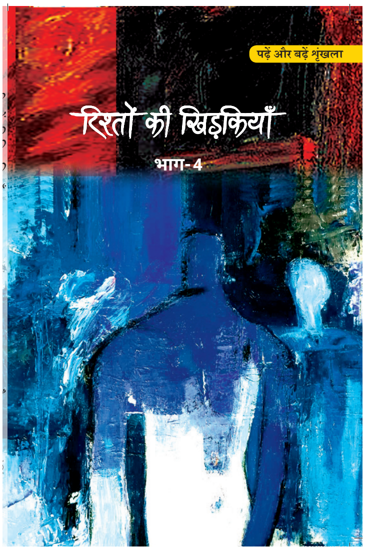

रिश्तों की खिड़कियाँ, भाग- 4

मूल्य – ₹ 160.00

कोड – 21193

ISBN – 978-93-5292-641-1

अधिक जानकारी के लिए कृपया www.ncert.nic.in देखिए अथवा कॉपीराइट पृष्ठ पर दिए गए पतों पर व्यापार प्रबंधक से संपर्क करें।

21194

विद्ययाऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 978-93-5292-821-7